होलकरहिन्दीग्रन्थमाला न० ७

जर्मनी में लोक-शिक्षा

अनुवादक

पशुपाल वर्म्मा

प्रकाशक

श्रीमध्यभारतहिन्दीसाहित्यसमिति,

इन्दौर

सम्वत् १९७६

प्रथम मुद्रण] [मूल्य ।॥)

विषय-सूची ।

तृतीय भाग

चतुर्थ भाग

पांचवां भाग

छठवां भाग

निवेदन ।

आजकल जिधर देखिए उधर शिक्षा विषयक जाग्रति फैल रही है। देशके नेताओं का ध्यान शिक्षा की ओर बहुत कुछ आकर्षित हुआ है। इस बात को प्राय सम्पूर्ण देशवासियो ने स्वीकार कर लिया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली सदोष है और उसमें सुधार होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे समय में हम अपने प्रिय देशवासियो तथा हिन्दी भाषा-भाषियो के सम्मुख एक ऐसे देश की शिक्षा का इतिहास लेकर उपस्थित होते हैं, जिस देश की उन्नति चरम सीमा तक पहुँची हुई समझी जाती है।

श्रीयुत पाण्डुरङ्ग दामोदर गुणे, एम० ए०, पी-एच० डी०, इस पुस्तक के मूल लेखक हैं। इस समय आप पूने के फर्ग्युसन कालेज के प्रोफेसर है। आपने कुछ वर्ष पहले युरोप का प्रवास किया था। उस प्रवास में आप कई वर्षों तक जर्मनी में भी रहे और वहा पर आपने उस देशकी शिक्षा पद्धति का बडी सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन किया। भारतमें आनेके पश्चात् आपने मराठी के 'ज्ञान प्रकाश' नामक पत्र में इस विषय पर कुछ लेख लिखे। उन लेखो को जनता ने बहुत पसन्द किया और कई मित्रों ने आप से आग्रह किया कि वे "जर्मनी की शिक्षा" पर कोई उत्तम पुस्तक लिखें। आपने अपने मित्रों के आग्रह पर मराठी भाषा में पुस्तक लिखकर प्रकाशित कराई। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी अनुवाद है। प्रोफेसर साहब ने इस पुस्तक

और है। वह यह कि इस पुस्तक में जर्मन भाषा के शब्दों का बहुत स्थानों में प्रयोग हुआ है। अतएव पाठकों को कहीं कहीं अस्पष्टसा मालूम होना सम्भव है, किन्तु ऐसा करना अनिवार्य्य था। इसका कारण यही है कि मूल पुस्तक में ही जर्मन भाषाके शब्दों की बहुलता है और यह लेखक जर्मन-भाषा से अनभिज्ञ है। इसलिए उसे वे शब्द ज्यों के त्यों रख देने पड़े हैं। तो भी उसने उनको यथासम्भव कम करने का प्रयत्न किया है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे यदि पुस्तक में कहीं कोई भूल पावें तो कृपया उसे सुधार लें।

हम श्रीयुत सत्यशोधराव हुद्लीकर एम० ए० के बड़े कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमको ग्रन्थकर्त्ता से अनुवाद करने की आज्ञा दिलवाई, तथा उपयोगी सूचनाएं करके हमारे कार्य्य को अधिक सुकर कर दिया। इसके साथही साथ हम ग्रन्थकर्त्ता महोदय के भी कृतज्ञ हैं, जिन्होंने उदार हृदय से अनुवाद करने की आज्ञा प्रदान की।

इन्दौर,
भाद्रपद, कृष्ण जन्माष्टमी, १९७६ } पशुपाल वर्म्मा।

जर्मनी में लोक-शिक्षा।

प्रथम भाग।

प्रारम्भिक वक्तव्य।

इस समय हमारे भारतवर्ष में चारों ओर शिक्षा-विषयक जाग्रति होने लगी है। इसके साथ ही साथ प्रारम्भिक शिक्षा को सम्पूर्ण देश में अनिवार्य्य करवाने के लिए समाज के नेतागण जुदा जुदा प्रयत्न करने लगे हैं। निस्सन्देह उनके प्रयत्न आज नहीं तो कुछ काल पश्चात् अवश्य ही सफल होंगे, किन्तु इस सामाजिक जाग्रति के समय में जिन सभ्य देशों ने शिक्षा विषयक अत्यधिक उन्नति कर ली है, तथा उन देशों में से जो जर्मन राष्ट्र इस विषय में प्रमुख माना जाता है उसकी लोकशिक्षा का ज्ञान हमारे प्रिय देशवासियों को अवश्य ही लाभकारी होगा। अतएव हम उस देश की सच्ची लोक शिक्षा का, उसके इतिहास का और उस शिक्षा पद्धति का कैसा प्रभाव पड़ा, आदि बातों का, यथाशक्ति विवेचन करेंगे। कई महानुभाव यह तो जानते ही होंगे कि संयुक्त जर्मनी में शिक्षा अनिवार्य्य तथा निःशुल्क है। इस सात करोड़ जनसमुदाय वाले देश में आप कहीं भी क्यों न ढूंढें, कोई भी मनुष्य ऐसा न मिलेगा जो कुछ भी शिक्षा प्राप्त न किये हो। इसका कारण यही है कि वहाँ बड़े सुप्रबन्ध के साथ प्रारम्भिक शिक्षणालयों

का एक जालसा बिछा हुआ है। अनिवार्य्य शिक्षा त
शिक्षणालयों का यह प्रबन्ध केवल उसी समय से नहीं हु
है जब से कि सम्पूर्ण जर्मन राष्ट्र संयुक्त हुआ है, किन्तु इ
स्थिति को उत्पन्न होने में अनेक शताब्दियाँ व्यतीत हो
हैं, तथा अनेक बुद्धिमान् और कार्य्यकुशल मनुष्यों
मस्तिष्कों ने सपरिश्रम काम किया है और इसी कारण जर्म
राष्ट्र आज इस उन्नतावस्था को पहुँचा है। पाठकग
आइये, हम इस देश की शिक्षा प्रणाली को आरम्भ से देख
शुरू करें।

पहला अध्याय ।

प्रारम्भिक-शिक्षा ।

जर्मन भाषा में प्रारम्भिक शिक्षणालयों को 'फोल्कस् शूल' कहते हैं। (सुविधा के लिए हम भी इसी शब्द को सर्वत्र प्रयुक्त करेंगे) इन शिक्षणालयों के इतिहास का समय तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम तो सन् १६४८ तक का आरम्भ समय है जिसमें कि इन शिक्षणालयों की स्थापना हुई, और दूसरा सन् १६४८ से सन् १८०० तक का—इसी समय शिक्षा विभाग धर्माचार्य्यों के अधिकार से निकल कर राज्यसत्ता के अधिकार में आया तथा इसी समय में अनिवार्य्य शिक्षा का मन्तव्य कार्य्य रूप में परिणत हुआ, तीसरा समय उन्नीसवीं सदी और उसके बाद का है, जिसमें फोल्कस् शूल' की उन्नति और सुधार का कार्य्य सम्मिलित किया जाता है।

शिक्षा का इतिहास ।

'फोल्कस् शूल' अर्थात् प्रारम्भिक शिक्षणालयों की स्थापना का समय वह है, जब मार्टिन् लूथर ने यूरोप के धार्मिक जगत् में धर्मक्रान्ति उपस्थित की थी। इस समय से पूर्व की शिक्षा पद्धति बड़ी भद्दी थी। उसको हम लोक-शिक्षा नाम भी नहीं दे सकते। उस समय की सम्पूर्ण शिक्षा पादरी धर्माचार्य्यों के अधिकार में रहती थी और उस शिक्षा का केवल यही उद्देश रहता था कि विद्यार्थियों को ग्रीक और लैटिन भाषायें तथा अरिस्टोटल का न्यायशास्त्र पढ़ाकर

इस योग्य बना दिया जाय कि वे प्रचलित धर्म का युक्ति द्वारा मण्डन कर सकें। किन्तु जब लूथर और उसके मित्रों सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में धर्मक्रान्ति की, तब उन महा भावों ने इस बात पर अधिक परिश्रम किया कि सर्वसाधार जनता को मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देकर उन्हें इस योग्य ब दिया जाय कि वे स्वयं धर्म शास्त्र को पढ़कर उनका मतलब सम झने लगें। इसके साथ ही साथ उनके हृदय में शिक्षा का स्थि प्रभाव भी हो जाय। ऐसा विचार कर उन्होंने अनेकाने लेख लिख-लिखकर तथा देश के राजामहाराजा औ सरदारों से मिल मिलकर समयानुकूल शिक्षा दिलवाने क कोशिश की। सन् १५२४ में लूथरने जर्मनी के समस्त नग के अधिपतियों तथा सभ्यों के नाम एक पत्र लिखा। उस प की दो बातें विशेष महत्त्व पूर्ण थीं। पहली यह कि यदि ई वाक्य (धर्मशास्त्र) को सुरक्षित रखना है तो यह आवश्य है कि जर्मन भाषा की पढ़ाई समस्त जर्मनी में अनिवार्य्य क दी जाय। दूसरी यह कि समस्त नगर और प्रान्तों अधिकारियों का यह आवश्यक कर्त्तव्य होना चाहिए कि अपने अपने स्थानों में पाठशालाओं का ऐसा सुप्रबन्ध कर दें जिससे सर्वसाधारण जनता की सन्तान अवश्य ही शिक्ष ग्रहण करने के लिए बाध्य हो। कहने की आवश्यकता नह कि लूथर और मेलेंग्थान प्रभति महानुभावों को इस पत्र अनुसार सफलता प्राप्त हुई और नूतन धर्मसंस्था (चर्च के अधिकार में अनेक पाठशालाएँ खुल गईं। इन पाठशाला में विशेषकर धार्मिक शिक्षा पर जियादा जोर दिया जाता था जर्मन् भाषा तथा उस भाषा में लिखी हुई ' केटेचिज़्मुस

शिक्षा, इसके बाद लैटिन और ग्रीक भाषाएँ, इस प्रकार से उस समय भी एकाङ्गी शिक्षा दी जाने लगी। किन्तु तो भी लूथर प्रभृति महानुभावों का परिश्रम एक दूसरी ही दृष्टि से बड़ा महत्त्वशाली समझा जाता है। उन महानुभावों ने एक नवीन कल्पना का आविष्कार किया था, और वह कल्पना यही थी कि 'सर्वसाधारण जनता को शिक्षा दी जावे।' वे लोग इस कल्पना को एक खास रूप भी दे गये।

जर्मनी की लोक शिक्षा का सच्चा अभ्युदय सन् १६४० ई० से प्रारम्भ हुआ। इस सत्रहवीं शताब्दि में अनेक प्रतिभाशाली विद्वानों ने 'सच्ची लोक शिक्षा' विषय पर सैकड़ों लेख लिख लिखकर प्रकाशित करवाये और उन्होंने स्वयं अनेक स्थानों पर शिक्षा का कार्य करके अपनी शिक्षा पद्धति को प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध कर दिखलाया। महाशय राट्क ने सन् १६१२ में शिक्षा विषय पर एक पुस्तक प्रकाशित करवाई थी और उसमें शिक्षा की तात्त्विक बातों का विवेचन किया था। नमूने के तौर पर हम कुछ बातों का सारांश नीचे लिखे देते हैं —

"सबसे पहली बात तो यह होनी चाहिए कि प्रत्येक विषय मातृभाषा में तथा सृष्टि नियमानुकूल सिखलाया जाय, एक समय में एक ही विषय तथा एक ही बात बारम्बार कहलाई जाय, बालकों को डराया या धमकाया न जाय, प्रथम कोई भी सर्वाङ्गपूर्ण रचना और बाद में उसकी अवयव रचना बतलाई जाय (उदा० प्रथम पठन और पश्चात् नियम, या प्रथम वाक्य और पश्चात् व्याकरण), सब बातें प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा सिखलायी जायँ (ऐसा न हो कि जो

कुछ शिक्षक कहे, वही प्रामाण्य है) , कोई भी व्यक्ति शिक्षा से वञ्चित न रह सके , कम से कम लिखना पढना तो सब को ही आना चाहिए, इत्यादि।" इसी प्रकार के विचार महाशय कोमेंस्की के थे, और वे अधिक उपयोगी थे। महाशय कोमेंस्की इस सिद्धान्त पर सब से जियादा जोर देते थे कि 'परमात्मा का ज्ञान आबालवृद्ध सभी को होना चाहिए, और जब कि यह माना जा चुका है कि सृष्टि और बायबल के द्वारा परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त होता हे, तब हर एक मनुष्य के लिए आवश्यक हे कि वह ,लिखना पढना और सृष्टि को अवलोकन करना सीखे।' महाशय कोमेंस्की ने अपनी बनाई एक पुस्तक में शिक्षा-पद्धति के तीन विभाग किये हैं। प्रथम तो 'गृह-शिक्षा' जो कि केवल माता-पिता द्वारा बालक की उम्र के छठे वर्ष तक घर पर ही मिलनी चाहिए। इस गृह शिक्षा में केवल इतना प्रयत्न किया जाय कि जिससे बच्चा बोल सके और उसमें धार्मिक भाव की जाग्रति हो उठे। दूसरे विभाग में 'शोला व्हर्नाकुला' इसमें लिखना, पढना तथा व्याकरणद्वारा मातृभाषा का उत्तम ज्ञान हो जाना चाहिए तथा धर्म, अङ्क गणित, भूमिति, समाजशास्त्र, भूगोल, इतिहास, गायन और कुछ थोडा हस्त-कौशल का काम सिखा देना चाहिए। ये विषय छ वर्ष में अर्थात् बालक की उम्रके बारहवें वर्ष तक हो जाने चाहियें। इस तरह से जब प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण हो जाय तब विद्यार्थी नगर की लैटिन पाठशाला में और बाद प्रान्तीय विश्व-विद्यालय में प्रवेश करे। कोमेंस्की ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार की शृङ्खलाबद्ध शिक्षा-पद्धति का प्रतिपादन किया है। महाशय राटूक और कोमेंस्की के लेखों का प्रभाव वहांकी जनता पर खूब पडा और

कुछ प्रान्तों के अधिकारियों को उनके कथन पर विश्वास हो गया। उन्होंने अपने समीप कुछ जा कार मनुष्यों को रखकर पाठशालाएँ स्थापित करने का सद्उद्योग प्रारम्भ कर दिया।

सन् १६१७ में वायमार* रियासत ने अपने यहा इस प्रकार की पाठशालायें स्थापित करने के लिए कानून पास कर दिया। जिसको सच्चा 'फोल्कस् शूल' कहना चाहिए। उसका प्रारम्भ यहीं से हुआ था। इसके दूसरे ही वर्ष इसी प्रकार के कानून का मसविदा हेसेन्कासेल नामक रियासत ने भी तैयार करवाया। इन दोनों ही स्थानों के कानून में वे तत्व स्वीकार किये गये थे जो महाशय राट्क ने प्रतिपादन किये थे। वायमार रियासत में यह कानून विशेष कर ग्रामवासियों के लिए पास हुआ था और इसी लिए इस कानून में जर्मन भाषा को विशेष महत्त्व दिया था। इस कानून में सब से भारी विशेषता जो थी, वह यही थी कि इसमें प्रथम ही प्रथम आनिवार्य्य शिक्षा का तत्व स्वीकार किया गया। इस प्रकार से लूथर आदि महोदयों का परिश्रम तथा प्रयत्न पहलेपहल इस राज्य में आकर सफल हुआ। इस कानून में जिस जगह अनिवार्य्य शिक्षा देने के लिये लिखा है, उस जगह पर एक धारा इस आशय की थी, " हरएक ग्राम की पाठशाला के शिक्षक को तथा उस ग्राम के उपाध्याय को एक ऐसी तालिका बना रखनी चाहिए जिसमें उस ग्राम के समस्त बालकों का जिनकी उम्र छः से बारह वर्ष तक की है, नाम लिखा हो। यदि कोई

*उस समय जर्मन साम्राज्य अनेक छोटे छोटे राष्ट्रों में विभक्त था, और उनके नरेश अपना अपना प्रबन्ध करने में पूर्ण स्वतन्त्र थे

—अनुवादक।

मनुष्य अपने लड़के को पाठशाला में न भेजे तो प्रथम तो उसको जाकर समझाया जावे, यदि वह इतने पर भी न समझे तो पश्चात् ग्राम के अधिकारी द्वारा वह अपने कर्तव्य पालन के लिए विवश किया जाय।" जबकि इस प्रकार के कानून बन रहे थे, उसी समय वह सुप्रसिद्ध युद्ध आरम्भ हो गया जो इतिहास में 'तीस वर्ष के युद्ध' के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसके बाद सम्पूर्ण जर्मनी में लग भग पच्चीस वर्षों तक युद्ध की अशान्ति मची रही। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए।

अनिवार्य्य शिक्षा का मूल तत्त्व।

अनिवार्य्य शिक्षा का जियादा ज़ोर सन् १६४२ में पहले पहल गोटा प्रान्त में प्रारम्भ हुआ। इस प्रान्त का अधिकारी ड्यूक अर्न्स्ट बड़ा धार्मिक और दयालु था। उसको यह बात बड़ी बुरी मालूम हुई कि उसकी प्रजा अज्ञान पङ्क में फँसकर उसके घोर दुःसह परिणामों को भोगा करे। वह स्वयं एक सुशिक्षित पुरुष था और इसी लिए वह शिक्षा के महत्त्व को पहचानता था। उसने जान लिया कि इस 'तीस वर्षवाले युद्ध' में प्रजा की अपने राजा तथा स्वदेश के प्रति जो उदासीनता रही, वह केवल उनके अज्ञानग्रस्त होने के ही कारण रही। इस बात को केवल उसीने ही नहीं जाना, किन्तु जर्मनी के अन्य अनेक शासकों ने भी समझ लिया था। इसी समय उसे अपने विद्या विभाग के लिए एक सुयोग्य मन्त्री मिल गया। वह राट्क के विचारों का पूर्ण अनुयायी था। इसी मन्त्री की सहायता पाकर उसने सन् १६४२ में एक सुप्रसिद्ध आज्ञा पत्र प्रकाशित करवाया। उस आज्ञा पत्र का

मुख्य आशय यह था कि "पाँच वर्ष की उम्र के प्रत्येक बालक को पाठशाला में जाना आवश्यक है, तथा जितनी शिक्षा निर्धारित की गई हैं, उसके सम्पूर्ण होने तक उसे पाठशाला में पढ़ना लाजिमी है।" इस आज्ञा पत्र में शिक्षा के विषय, पाठविधि और प्रबन्ध की रचना इतनी उत्कृष्टता से की गई थी कि लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक सम्पूर्ण जर्मनी में इसीके निर्धारित नियमों पर प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती रही। इस आज्ञा पत्र की पाठविधि में जर्मन-भाषा, गणित धर्म, गायन तथा नित्य के उपयोग में आनेवाले पदार्थों का और सृष्टि का ज्ञान इतने विषयों का समावेश किया गया था। इसमें ऐसा तरीका रक्खा गया था कि पहले तो विद्यार्थी को जिस गाँव में वह रहता है, उस गाँव का ठीक २ ज्ञान कराना, और बाद में उसपर से भूगोल सिखलाना। एक नियम यह रक्खा गया कि यदि कोई लड़का गैर हाज़िर रहे, इतनाही नहीं बल्कि एक घण्टा पिछड़कर स्कूल आये तो उसे एक 'ग्रोशेन्' (एक आने से कुछ अधिक) दण्ड स्वरूप देना चाहिए।" महानुभाव हर्सोग अर्न्स्ट केवल इतना ही करके शान्त नहीं हो बैठा किन्तु उसने बढ़ती हुई पाठशालाओं के लिए मकानों, शिक्षकों और उपयुक्त पुस्तकों आदि आवश्यक वस्तुओं का भी खूब सग्रह किया। इसके अतिरिक्त उसने दो इन्स्पेक्टरों को इस कार्य्य पर नियत किया कि वे सम्पूर्ण प्रान्त में घूम घूमकर इस बात का निरीक्षण करें कि ठीक नियमानुसार सब काम हो रहा है या नहीं। उन इन्स्पेक्टरों को दौरे के लिए घोड़े मिलते थे या उनको खर्च दिया जाता था। महाशय हर्सोग अर्न्स्ट की हार्दिक इच्छा थी कि इस सार्वजनिक शिक्षा के लिए नई पद्धति के शिक्षक तैयार किये

जायँ। इसके लिए उसका विचार था कि एक शिक्षक पाठशाला खोली जाय। यदि उसके हाथ से ऐसा हो जाता तो शिक्षा के कार्य्य में और भी ज़ियादा सुभीता हो जाता, पर दुःख है कि वह अपने विचार को कार्य्य में परिणत न कर सका और बीच में ही कराल काल ने उसपर आक्रमण कर दिया। तो भी वह मृत्यु समय में अपने उत्तराधिकारियों को यह काय पूर्ण करने के लिए बड़े आग्रह के साथ कह गया।

महाशय हर्त्सोग अर्न्स्ट का शिक्षा-विषयक प्रयत्न निष्फल न हुआ। शीघ्र ही उसके आदर्श पर जर्मनी की अन्य रियासतों ने अपने २ यहाँ शिक्षा विषयक कानून बनाना प्रारम्भ कर दिया। सन् १६५७ में 'ब्राउन श्वाइग' और १६४९ में वर्टेम्बर्ग रियासत ने अपने २ यहाँ अनिवार्य्य शिक्षा का कानून पास कर दिया। लिडा और आटल्फोल ने क्रमानुसार सन् १६६७ तथा १६९७ में और धीरे धीरे हेम्बर्ग और अन्य नगरों ने भी इसीका अनुकरण किया। इस प्रकार से सत्रहवीं सदी के मध्यतक जर्मनी के अनेक छोटे छोटे राष्ट्रों तथा नगरों ने लोक-शिक्षा को अनिवार्य्यता का रूप देना शुरू कर दिया था। किन्तु उसके बड़े बड़े राज्यों और नगरों ने अभी तक इस विषय पर तटस्थ वृत्ति रक्खी थी, तो भी वे इस विषय से निरे उदासीन न थे। इसके प्रमाण-स्वरूप में यही कह देना काफी होगा कि अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में केवल पूर्व प्रशिया में इन नये 'फोल्क्स शूलों' की संख्या कोई २,००० के लगभग थी, किन्तु अनिवार्य्य शिक्षा का तत्त्व इन बड़े राज्यों में बहुत देर से, अर्थात् सन् १७१७ में स्वीकार किया गया। जब अनिवार्य्य शिक्षा देना मंजूर हो गया तब राजा की आज्ञा से एक आज्ञा पत्र प्रकाशित किया गया और

उसके लिए बढ़े हुए खर्च का समयानुसार सब आवश्यक प्रबन्ध कर दिया गया। लगभग बीस वर्ष के पश्चात् इस शिक्षा के प्रबन्ध का भार ग्राम पचायतों (म्युनिसिपैलिटियों) को सुपुर्द किया गया। तो भी उस समय निर्धन ग्राम पचायतों को स्थल खर्च के लिए सरकारी खजाने से सहायता स्वरूप ५०,००० डालर (एक डालर = ३ रु० २ आने) दिये गये थे।

—— ० ——

दूसरा अध्याय

प्रारम्भिक शिक्षा की कठिनाइयाँ।

जर्मनी के समस्त हिस्सों में प्रारम्भिक अनिवार्य्य शिक्षा का कानून सत्रहवीं सदी के अन्त और अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में प्रचलित हो गया था। किन्तु इसके पूर्व बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जिस प्रकार हमारे भारतवर्ष में जब कोई महानुभाव अनिवार्य्य शिक्षा को प्रचलित कराने के अर्थ आन्दोलन करते हैं तब उन पर बड़े बड़े आक्षेप किये जाते हैं और ढूंढ ढूंढ कर कठिनाइयाँ पेश की जाती हैं। ठीक यही हालत उस समय जर्मनी में हुई। हमारे भारतवर्ष में अनिवार्य्य शिक्षा का प्रचलित करने में अधिकारियों की ओर से मुख्यकर दो बड़ी कठिनाइयाँ पेश की जाती हैं। प्रथम तो द्रव्य की कमी, और दूसरी योग्य अध्यापकों का न मिलना। प्रथम ही प्रथम जर्मनी में भी ये कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, किन्तु उस राष्ट्र ने कठिनाई में से भी अपना मार्ग निकाल ही लिया। जर्मनी में उस समय मुख्य करके निम्नलिखित कठिनाइयाँ थीं —

सब से पहिली और बडी कठिनाई जो थी, वह द्रव्य की कमी की थी। तीस वर्ष के युद्ध के कारण अनेक रियासतें धूल में मिल गई थीं तथा सम्पूर्ण देश में उस समय दारिद्रय का अखण्ड राज्य हो गया था। इतना होते हुए भी अनेक छोटे-बडे राज्यों तथा प्रशिया के समान बडे राज्यों की डोर अपने हाथ में रखनेवाले सुयोग्य अधिकारियों ने इस शिक्षा विषयक कार्य्य के लिए द्रव्य देने में कसर न की। ये अधिकारीगण जान गये थे कि जब शिक्षा के द्वारा सम्पूर्ण मनुष्य सुशिक्षित हो जायँगे, तब वे जरूर ही उद्योग धन्धों की उन्नति करके राज्य को लाभ पहुचायँगे। सैनिक, सिपाही शिक्षा के द्वारा पूर्ण स्वामिभक्त, चतुर और स्वदेशाभिमानी उत्पन्न होंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका यह अनुमान बहुत ठीक निकला।

दूसरी कठिनाई सुयोग्य अध्यापकों के न मिलने की थी। पहले इस कार्य्य को धर्माधिकारी किया करते थे, और उनमें यह धन्धा पूर्वपरम्परा से चला आता था। अतएव आवश्यकतानुसार उनमें से अध्यापक मिल जाते थे, किन्तु जब अनिवार्य्य शिक्षा का प्रारम्भ हुआ, तब पाठशालाओं की संख्या भी बहुत बढ़ गई। अतएव जितने अध्यापकों की आवश्यकता थी, उतने उनमें से न मिल सके। तब इस अध्यापनकार्य्य में अन्य लोगों को भी लगाना पडा। अध्यापकों की बहुत न्यूनता होने के कारण सन् १७८० म प्रशिया के महाराजा साहब ने यह आज्ञा दे दी कि जितने आहत सिपाही युद्ध से वापिस लौटे हैं, उनमें से जितने शिक्षित हों, वे अध्यापन कार्य्य में लगा दिये जायँ। ये लोग ग्राम पाठशालाओं में नियत किये गये। यद्यपि इसी सदी में कुछ शिक्षक

पाठशालायें खुल चुकी थीं, किन्तु इस शताब्दि के अन्त तक भी ये पर्याप्त शिक्षक तैयार न कर सकीं। सन् १७०० ई० के लगभग गाटा रियासत के फ्रांक नामक तत्त्ववेत्ता ने, जो कि शिक्षा के कार्य्य में परम निपुण था, अपने कई अनुभवी मित्रों की सहायता से हाल, स्टेटिन्, कानिग्जवर्ग, हाल्वरस्टाट आदि स्थानों में योग्य शिक्षक तैयार करने के लिए कुछ शिक्षक पाठशालाएँ स्थापित कीं, परन्तु उनकी संख्या केवल अँगुलियों पर गिनने लायक थी। ये पाठशालाएँ पर्याप्त शिक्षक तैयार न कर सकती थीं।

अनिवार्य्य शिक्षा में तीसरी कठिनाई कृषकों की ओर से उपस्थित हुई। उनका कहना था कि "यदि हमारे लड़के पाठशाला में जाकर रुके रहेंगे तो ये हमारे कृषिकार्य में सहायता न दे सकेंगे।" कृषकों की ओर से जो यह कठिनाई उपस्थित हुई, उसका कारण केवल उनका गाढ़ अज्ञान था। अतएव उनके इस लोकोपयोगी कार्य्य में बाधा उपस्थित करने पर हमें कोई आश्चर्य नहीं। कुछ दिनों के बाद उन्हें स्वयं अनुभव हो गया कि उस कृषक में, जोकि जन्म भर हल चलाता रहता है तथा निरक्षर है और उस कृषक में, जिसकी मानसिक और शारीरिक शक्तियां शिक्षा के द्वारा विकसित हो गई हैं, बड़ा भारी अन्तर है।

चौथी कठिनाई बड़े बड़े ज़मींदारों की ओर से उपस्थित की गई। वे सबके सब अपने अधीनस्थ नौकरों, पट्टेदारों, किसानों और उनकी सन्तान को शिक्षा दिलवाने के विरुद्ध हो गये। इसका कारण यह था कि एक तो उनकी शिक्षा का भार बहुतसा उनपर पड़ता था, जिससे उनको कुछ न कुछ

थैली खाली होती थी, और दूसरे उनका यह खयाल था कि हमारे अधीनस्थ कृषक जितने अधिक अज्ञानी और निरक्षर रहेंगे, हम उतना ही अधिक उनसे काम ले सकेंगे—उनको लातें और ठोकरें मार मार कर पशु के समान काम में जोतेंगे। किन्तु अन्त में सत्य की ही जय हुई और अठारहवीं शताब्दि के उत्तरार्ध में इन्हीं जमींदारों में से एक महानुभाव नेता बनकर उन अशिक्षित और अज्ञानग्रस्त कृषकों को शिक्षा दिलवाने का पक्षपाती हो गया। इस उदारचेता महाशय का नाम 'फान् रोचाऊ' था। अज्ञानी कृषकों में शिक्षा-प्रचार करने के हेतु वह एक विशेष घटना-द्वारा प्रेरित हुआ। एक बार उसकी जमींदारी के खेतों पर एक विशेष प्रकार की बीमारी का आक्रमण हुआ। उसने इसके निवारणार्थ कई उपाय किये, किन्तु अज्ञानग्रस्त कृषकों के अज्ञान के कारण भूत चुडैलों पर विश्वास होने के कारण तथा उनके विचित्र विचारों के कारण, उसमें अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो गईं। उस समय उसे अनुभव हुआ कि इन लोगों की तथा हमारी अवनति और दुखों का कारण केवल 'शिक्षा से वञ्चित् रहना' है। ऐसा अनुभव होने के पश्चात् उसने अपने अधीनस्थ सम्पूर्ण मनुष्यों को शिक्षा दिलवाने का कार्य आरम्भ कर दिया और मरते दम तक उसने इसके लिए बहुतेरी कोशिशें कीं।

जर्मनी के शिक्षा विषयक इतिहास को समाप्त करने के पहले हम अपने पाठकों को एक महानुभाव का परिचय करा देना आवश्यक समझते हैं। इन महानुभाव ने शिक्षा-प्रचार के लिए अपना तन मन-धन समर्पण कर दिया था। इनका नाम म फ्राक था। जिस समय आप हाल विश्व विद्यालय

में धर्म और तत्त्वज्ञान के प्रोफेसर थे, तबसे ही आपने शिक्षोन्नति के लिए प्रयत्न करना शुरू कर दिया था। सन् १६६५ में इन्होंने गरीब लड़कों के लिए एक पाठशाला ('आर्मेन् शूल') स्थापित की। कुछ दिनों के बाद उस पाठशाला की कीर्ति सब दूर फैल गई और उससे प्रेरित होकर कुछ मध्यम स्थिति के विद्यार्थी भी उसमें पढ़ने को आने लगे। पाठशाला की इस उन्नति को देखकर महाशय फ्राक ने उसी के साथ एक नागरिक पाठशाला (ब्युर्गर शूल) खोल दी। इसके बाद छोटे २ शिशुओं के लिए एक पाठशाला खोली और उसी के साथ साथ शिक्षक तैयार करने के लिए भी एक पाठशाला खोल दी। कुछ दिनों के बाद इसी में से ट्रेनिङ्ग कालेज का उद्भव हुआ। उन लड़कियों के लिए जोकि मध्यम स्थिति की तथा ऊँचे घरानों की थीं महाशय फ्राक ने ही पाठशालाएँ स्थापित कीं, उच्च स्त्री-शिक्षा का यह प्रथम प्रयत्न था। अन्त में, सन् १७०७ में एक ऐसी शिक्षक पाठशाला खोली गई जिसमें शिक्षण कला का ज्ञान प्राप्त कर शिक्षकगण उच्च शिक्षा दे सकें। केवल इतनी ही बातों से पाठकगण समझ सकते हैं कि महाशय फ्राक ने स्त्री शिक्षा के लिए कैसा भारी उद्योग किया था। उसे इस कार्य्य में सहयोगी तथा शिष्यगण भी बहुतसे मिल गए थे। अतएव इन सब लोगों ने मिलकर प्रशिया के तत्कालीन नरेश से सहायता की याचना की। हर्ष की बात है कि प्रशिया के महाराजा ने इनको सहायता देना स्वीकार कर लिया। अन्त में, सन् १७३३ में स्टेटिन तथा १७३५ में माग्डेबर्ग और अन्य स्थानों में ट्रेनिङ्ग कालेजों की स्थापना हो गई। फ्राक की मृत्यु के पश्चात् आर्मेन शलों तथा वायजेन हाउसों की संख्या में बड़ी मार्के की वृद्धि हुई और स्यूरिगेन

तथा सेक्सनी प्रान्त में फ्रांक के शिक्षा विषयक मन्तव्यों का प्रसार बड़ी शीघ्र गति से हुआ।

इस शिक्षा की घुड़दौड़ में कैथेलिक जर्मनी में, खास कर बेवेरिया प्रान्त में जो बहुत पिछड़ा हुआ था, सन् १७५० से १७७० तक कुछ सुधार हो गये थे, यथा शिक्षा में अनिवार्य्य तत्त्व का समावेश शिक्षाविभाग को चर्च के अधिकार से निकाल कर राज्यसत्ता के अधिकार में लाना, शिक्षा में सुधार करके उसमें आधुनिक भाषा तथा आधुनिक वैज्ञानिक पुस्तकों का समावेश होना, इत्यादि सुधार हो गये थे। इसका साराश यह निकला कि कैथेलिक जर्मनी में शिक्षा का सुधार मूल सहित तथा शनै शनै न होते हुए एकदम अमल में लाया गया, किन्तु प्रोटेस्टण्ट जर्मनी—यथा प्रशिया के समान राष्ट्र—में वह मूलसहित और शनैः शनैः विकसित हुआ।

तीसरा अध्याय

वृद्धि और सुधार।

जर्मनी के प्रारम्भिक शिक्षालयों की स्थापना का समय और अनिवार्य्य शिक्षा के कार्य्य में परिणत होने का समय आदि वृत्तान्त संक्षिप्त में ऊपर कहा जा चुका है। इस के पश्चात् उन्नीसवी सदी में इन शिक्षणालयों की वृद्धि और सुधार हुए। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ तक समस्त जर्मनी में अनिवार्य्य शिक्षा का तत्त्व सर्वमान्य होने लगा था।

अतएव अब शिक्षा के मूल गहरे पैठने लगे। अब अनिवार्य्य शिक्षा के विरुद्ध कोई भी अपनी आवाज न उठाता था, किन्तु सभी की यह इच्छा हो गई कि अनिवार्य्य शिक्षा अवश्य ही दी जाय। इस समय शिक्षा में बड़ी तीव्र गति से उन्नति हुई। किन्तु अब एक कमी प्रकट होने लगी। इस समय नये नये आविष्कारों द्वारा तथा उद्योग-धन्धों की वृद्धि के कारण बड़े बड़े नगरों को महत्व प्राप्त होने लगा। उसी के अनुसार लोगों की मानसिक तथा शारीरिक आवश्यकतायें भी बढ़ने लगीं, किन्तु उन आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा का प्रबन्ध अब तक न हो पाया था। शिक्षकों की न्यूनता पहली ही हुई थी। अतएव अब इन त्रुटियों की पूर्ति की ओर शिक्षा निपुण विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस समय आवश्यकता हुई कि शिक्षा पद्धति तथा उसके उद्देश समयानुकूल परिवर्तित किये जाय। इन तमाम त्रुटियों को दूर करने के लिए एक अति विख्यात मनुष्य नेता बना। ये वही महाशय 'पेस्टालोजी' थे, जिन्होंने शिक्षा विषय में महान् कीर्ति प्राप्त की है। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा के उद्देशों तथा पद्धति पर लेख लिखना शुरू कर दिये। इनके विचारों को जनता ने बहुत पसन्द किया और उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई। तब प्रशियन शिक्षा विभाग के गुण ग्राहक अधिकारियों ने बर्लिन नगर से उनके समीप कोई आठ शिष्य भिजवाये। उनके भिजवाने का उद्देश यही था कि वे महाशय पेस्टालोजी से शिक्षा पद्धति का ज्ञान उपलब्ध करें। वे सब शिक्षक बर्लिन से चलकर पेस्टालोजी के समीप पहुंच गये। पेस्टालोजी ने इस बात की तत्वदृष्टि से समालोचना करके उसको जनता के सम्मुख रक्खा और बताया कि वास्तविक

दृष्टि से प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश क्या होना चाहिए तथा उसकी सिद्धि के लिए शिक्षा किस ढङ्ग पर दी जानी चाहिए। यद्यपि पेस्टालोजी को शिक्षक की हेसियत से कुछ जियादा सफलता न मिल सकी, परन्तु उनके प्रतिपादित सिद्धान्तों की उपयोगिता तथा व्यवहार्यता लोगो के सम्मुख प्रकट करने के लिए उसे सैकड़ों क्रियाकुशल शिष्य मिल गये। अन्त को इन शिष्यों ने उसके कार्य्य को सम्पूर्ण किया। शिक्षा का उद्देश क्या होना चाहिए, इस बात को पेस्टालोजी ने अपने बनाये हुए समस्त ग्रन्थों में बार बार बड़े बलवान् शब्दों में प्रकट किया है। वे कहते हैं—"जिस प्रकार की बुद्धि मनुष्य में है, वैसी अन्य प्राणियों में नहीं। और जबकि उसे यह बुद्धि रूपी देन परमेश्वर की ओर से मिली है, तो उसका हेतु केवल यही है कि मनुष्य को स्वतन्त्र और अपने पैरों पर खड़ा होने योग्य बनना चाहिए। उसे यह स्वतन्त्रता प्राप्त न करने देना, अथवा वह स्वतन्त्रता प्राप्त करने की कोशिश करता हो, तो उसके मार्ग में बाधाएँ उपस्थित कर देना, इन बातों से तो यही पता लगता है कि हम उसे आजन्म बाल्यावस्था में ही रखना चाहते हैं। सम्पूर्ण शिक्षा का केवल एक यही उद्देश है कि उसके द्वारा वैसे मनुष्य उत्पन्न किये जायँ जो बौद्धिक तथा नैतिक शक्तिसम्पन्न तथा स्वावलम्बी हों। किन्तु स्वावलम्बन की शिक्षा तभी प्राप्त हो सकती है जब हम अपनी नैसर्गिक शक्तियो को काम में लाने का अभ्यास करें। शिक्षक का काम केवल मात्र यही है [illegible] वह विद्यार्थियों की नैसर्गिक शक्ति[illegible] करे, तथा उन्हें तदनुरूप [illegible] दे। इसका मतलब यही है [illegible] केव[illegible] का काम

करना चाहिए। किसी लापरवाह आलसी लड़के को डराकर या धमकाकर व्यर्थ उसके मस्तिष्क में ज्ञान ठूसने से कोई लाभ नहीं, लड़के से पुरानी रीति के अनुसार रटा रटा कर पाठ याद करा लेना ही सच्ची शिक्षा नहीं है। नैसर्गिक तथा मानसिक शक्ति अवलोकन, परिज्ञान, मनोव्यापार आदि विकास तभी होता है, जब विद्यार्थी को उसकी इच्छा के अनुकूल बरतने दिया जाय। स्वाभाविक, नैतिक (moral) शक्ति के विषय में भी यही बात समझिये। इस विषय में शिक्षक का यही कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थी की नैतिक बुद्धि तथा नैतिक इच्छा को उनके हृदय में बढ़ावे और बाद उनको नैतिक-शिक्षा दे। इस प्रकार से उनकी प्रवृत्तियों को अच्छी बातों की ओर झुकावे। केवल मात्र 'सत्य वद' इस प्रकार के सूत्र रात दिन उनकी कर्णेन्द्रियों पर डालने से ही अथवा कोई 'मारल क्लास बुक' पाठ्य-पुस्तकों में रख देने से अभीष्ट-सिद्धि न हो सकेगी। हर एक मनुष्य को, उसके जन्म के साथ ही कुछ मानसिक शक्तियां प्राप्त हुआ करती हैं। उन मानसिक शक्तियों को अर्थात् बुद्धि, अभिरुचि तथा सत्यासत्य विवेक बुद्धि को अधिक विकसित कर देने का ही नाम शिक्षा है। इन शक्तियों को अभीष्ट मार्ग पर लगाने के लिए बाल्यावस्था ही उत्तम समय है। उस समय सर्वोत्तम पर नैसर्गिक शिक्षक केवल एक माता ही होती है। बच्चा अपनी माता का अनुकरण तत्काल करने लगता है और प्रेम की छाया में उसकी शक्तियों का विकास होने लगता है। शिशु-शिक्षा के लिए शिक्षक के हृदय म जितने प्रेम की आवश्यकता होती है, उतना प्रेम माता के हृदय में विद्यमान रहता है। बल्कि माता में इस प्रेम के अतिरिक्त कुछ अन्य नियमादि

गुणों का होना भी आवश्यक है। अतएव कन्याओं की उच
शिक्षा का प्रबन्ध बड़ी सावधानी से करना चाहिए।" म
शय पेस्टालोजी यही बातें सर्वदा कहा करते थे। उनके
सिद्धान्त के अनुसार अनेक स्थानों पर 'होअर मेडशेन स्
अर्थात् कन्या विद्यालयों की स्थापना शीघ्र ही हो गई। यद्य
बालकों को माता के द्वारा घर पर शिक्षा मिलना सर्वोत्तम
किन्तु कुल नियत अवस्था के बाद ऐसा होना असम्भव
तथा ऐसा करना सामाजिक नियमों के विपरीत भी होग
और समाज-शृङ्खला से उसका कोई मेल न बैठेगा। अतए
बालक को पाठशाला में ही भेजना आवश्यक है। पाठशा
ऐसी हो जो देखने में एक विस्तृत परिवार सी ही दृष्टिगोच
हो तथा वह गृह शिक्षा में सहायता करनेवाली—उसमें वृ
करनेवाली—संस्था हो। किन्तु वास्तविक स्थिति इसके विप
कुल विपरीत है। पाठशाला और परिवार में जमीन आसमान क
फर्क नजर आता है। जिस समय बच्चा अपनी छ वर्ष
आयु पूर्ण करने के बाद पहलेपहल घर छोड़कर पाठशाला
प्रवेश करता है तब वह उसे देखकर यह समझने लगता
कि मैं एक अजीब और नये जगत् में आ पड़ा हूँ। अतए
इस बदली हुई परिस्थिति से परिचय करने में ही उसे बहु
समय लग जाता है। ऐसी पाठशाला को देखकर पेस्टालोज
अति कुपित हो जाया करते थे और इसके सुधार के लि
उन्होंने बहुत दीर्घ परिश्रम किया। महाशय पेस्टालोजी
विचारों तथा परिश्रम का ही यह फल है कि आज हम बालो
द्यान शिक्षा प्रणाली (किंडरगार्टन) को सारे जगत् में फैलत
हुई देख रहे हैं। बालोद्यान-शिक्षा-प्रणाली अति शीघ्र लोकप्रि
हुई और पेस्टालोजी के जीते जी ही सम्पूर्ण जर्मनी में उसक

प्रचार हो गया। आजकल तो सारे संसार ने उस पद्धति को स्वीकार कर लिया है।

सर्वसाधारण जनता को अविद्यान्धकार से निकाल कर ज्ञान के प्रकाश में लाना तथा उनको ऐसी शिक्षा देना जिससे वह स्वावलम्बी, बुद्धिमान् और नीति निपुण बनें इत्यादि बातों का प्रतिपादन महाशय पेस्टालोजी किया करते थे। उस समय एक घटना ऐसी हुई जिसके कारण प्रशियन सरकार को पेस्टालोजी के ये उदार विचार ग्रहण करने पड़े। जिस समय फ्रान्स के सम्राट् नेपोलियन और जर्मन सरकार के बीच युद्ध हुआ, उस समय जर्मनी के निवासी स्वदेश हित के सम्बन्ध में बिलकुल बेपर्वाह थे। इतना ही नहीं, किन्तु वहां के कितने ही लोगों ने तो अपने शत्रु को ही सहायता दी। तब जाकर जर्मनी के राज्य मन्त्रियों की आँखें खुलीं और उन्होंने समझा कि लोगों की इस उदासीनता और देश-द्रोह का कारण यही है कि वे गहरे अज्ञान पंक में गड़े हुए हैं। युद्धोपरान्त उन अधिकारियों ने निश्चय कर लिया कि जनता को योग्य शिक्षकों द्वारा शिक्षा दी जाय। इन अधिकारियों में से जिसने सबसे जियादा प्रयत्न किया था, उसका नाम था—'फ्रायहर फान् स्टाइन'। इसीने महाशय पेस्टालोजी के समीप शिक्षा विषयक ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ अध्यापक भेज थाये थे। उसने शिक्षक पाठशालायें भी खुलवाईं। उस समय जर्मनी नेपोलियन के आक्रमणों से बड़ा घबरा गया था। जिस समय सेना का युद्ध बन्द हुआ उस समय संकट में पड़े हुए तत्कालीन प्रशिया के सम्राट् फ्रेडरिक विलियम ने बड़े महत्त्व पूर्ण उद्गार प्रकट किये थे। उन्होंने कहा था, "यद्यपि इस समय जर्मनी भौतिक बलों में निर्बल है, तथापि उसे उसकी

पूर्ति बुद्धिबल द्वारा करनी चाहिए। अतएव मेरी इच्छा है कि लोगों में शिक्षा-प्रचार करने तथा उसको पूर्णत्व प्राप्त कराने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न होने चाहिएँ।" अब वह समय था कि पूर्व-वर्णित समस्त कार्य्यों में अनिवार्यता पर दृष्टि रख शिक्षा-प्रचार होने लगा। शिक्षा को पूर्णत्व की कोटि पर पहुँचाने के लिए पेस्टालोज़ी के शिष्यगण अश्रान्त परिश्रम करने लगे और उन्होंने सम्पूर्ण जर्मनी में शिक्षक पाठशालाएँ खुलवाईं। साधनों की न्यूनता रहने पर भी वहाँ के नेतागण इस विश्वास पर कार्य करते गये कि "हमारा उद्देश पवित्र है। नवयुवकों को ज्ञानी बना देने—जनता को शिक्षित कर देने—के समान महान् और पवित्र कार्य दूसरा नहीं है।" सन् १८४० तक प्रशिया के ट्रेनिंग कालेजों की सख्या ४५ हो गई और आजकल ऐसे कालेजों की सख्या केवल अकेले प्रशिया में २०० के लगभग है।

इन तमाम बातों के सुधार का नतीजा यह हुआ कि सम्पूर्ण देश सुशिक्षित बन गया, और शिक्षा द्वारा जो कुछ भी लाभ हो सकता है उसका उपभोग जर्मनी कर रहा है। जर्मनी में उन लोगों को जो हर रोज रात-दिन मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं तथा उन लोगों को जो रात दिन खेत में हल चलाते हैं, कमसे कम लिखना-पढना और साधारण गणित अवश्य ही आता है। इसके सिवा वे लोग अपने देश के इतिहास भूगोल तथा सृष्टि शास्त्र के स्थूल सिद्धान्तों से अवश्य ही परिचित रहते हैं। ज्ञानक्षेत्र में उनकी दृष्टि थोडी बहुत फैली हुई अवश्य रहती है। जर्मनी में सैनिकों की भरती के समय दो हजार मनुष्यों में से केवल दो मनुष्यों का निरक्षर पाया जाना, हमारे लिए जितने आश्चर्य की बात है, जर्मनी के लिए

उतने ही अभिमान की है। सन् १९११ में प्रशिया की संख्या ४ करोड थी और प्रारम्भिक पाठशालाओं की संख्या ३६,१०० थी। अर्थात् प्रति एक सहस्र मनुष्यों के पीछे एक पाठशाला थी। उसके क्षेत्रफल की दृष्टि से ६ चोरस किलोमीटर (१$\frac{1}{2}$ किलोमीटर=१ मील) के पीछे एक पाठशाला थी। सन् १९०७ में बेवेरिया की जन-संख्या लगभग ७० लाख थी और प्रारम्भिक पाठशालाओं की संख्या ७४७३। अर्थात् बेवेरिया में प्रति ८८० मनुष्यों के पीछे एक पाठशाला तथा क्षेत्रफल के हिसाब से १० किलोमीटर पीछे एक पाठशाला का हिसाब बैठता है। यही हालत जर्मनी के अन्य प्रान्तों की भी समझिये।

जर्मनी की शिक्षा पद्धति और उसका प्रबन्ध इतना उत्तम है कि उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए अमेरिका और जापान ने अपने लोगों को वहाँ भेजा। उन लोगों ने वहाँ की शिक्षा पद्धति का बडी सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया और उनकी यही राय हुई कि यह पद्धति सर्व-श्रेष्ठ है। इसके पश्चात् इन लोगों ने अपने देश में लौटकर यह शिक्षा पद्धति अपने अपने यहाँ प्रारम्भ की। कहने का मतलब यह है कि अमेरिका और जापान जैसे राष्ट्रों ने भी जर्मनी की शिक्षा-पद्धति का अनुकरण किया है। अब तक भी अमेरिका, जापान तथा यूरोप के अन्यान्य देशों से अनेक विद्वज्जन इस श्रेष्ठ पद्धति का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु उस शिक्षा की जन्म भूमि में जाते रहते हैं और वहाँ के ज्ञान का लाभ, वापिस लौटकर, अपने देश-भाइयों को कराते हैं।

चौथा अध्याय ।

शिक्षा-पद्धति ।

अब हम अपने पाठकों को जर्मनी की शिक्षा पद्धति का परिचय कराते हैं। हम पहले कह आये हैं कि शिक्षा विषय में जर्मनी का मुख्य उद्देश यही है कि जनता बौद्धिक तथा नैतिक शिक्षा द्वारा स्वयं-सिद्ध अर्थात् स्वावलम्बी बनाई जाय। इस उद्देश की सिद्धि के लिए प्रारम्भिक पाठशालाओं में आठ वर्ष की शिक्षा रक्खी गई है। इन आठ वर्षों में बालक की उम्र के लिहाज से तथा विषय के महत्व के अनुसार कम-जियादा करके इतने विषयों की शिक्षा दी जाती है—धर्म, मातृ भाषा, अंक गणित, भूमिति, इतिहास, भूगोल, सृष्टि विज्ञान, लेखन, ड्राइङ्ग और गायन। पाठशाला की निचली दो श्रेणियों में बहुत छोटे छः सात वर्ष की उम्र के बालक रहते हैं। अतएव उनको सप्ताह में केवल १६ से १८ घण्टों तक ही वार्तालाप पद्धति से शिक्षा दी जाती है। इनमें यह नियम नहीं रहता कि अमुक समय में अमुक विषय ही सिखलाया जाय। आरम्भ के इन दो वर्षों में शिक्षा का लक्ष्य इस बात पर रहता है कि बच्चों पर अधिक बोझा न पड़ते हुए वे खेल कूद में ही शिक्षा प्राप्त कर लें। इतिहास, भूगोल, ड्राइङ्ग आदि विषय तीसरे वर्ष से प्रारम्भ होते हैं। एक सप्ताह में कौनसा विषय कितने घण्टा तक पढाया जाता है, उसका हिसाब इस प्रकार है —

धर्म शिक्षा समस्त श्रेणियों में ४ घण्टे, मातृभाषा ६ से ७ घण्टे, गणित ३ से ५ घण्टे, भूमिति केवल ऊपर की तीन श्रेणियों में २ घण्टे, भूगोल-इतिहास ४ घण्टे, सृष्टि-विज्ञान ३ घण्टे, गायन

तथा व्यायाम दो दो घण्टे, ड्राइङ्ग केवल ऊपर की चार श्रेणियों में ३ से ४ घण्टे। एक सप्ताहभर में कुल मिलाकर २४ से लेकर ३० घण्टों तक पढ़ाई होती है। कन्याओं को भूमिति के बदले सीना पिरोना सिखलाया जाता है। आरम्भ के दो वर्षों में केवल उनव स्तुओं का परिचय कराने पर जियादा जोर दिया जाता है जो रात दिन व्यवहार में आती रहती हैं। इसके लिए कभी कभी शिक्षक अपनी श्रेणी के बालकों को साथ लेकर बाहर घूमने को निकल जाते हैं और उनको फूल, फल, वृक्ष, जानवर आदि वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान कराते हैं। पहलेपहल वहाँ पर सबसे जियादा ध्यान इस बात पर दिया जाता है कि बालकों की अवलोकन शक्ति तथा होशियारी में वृद्धि हो, वे अपनी इन्द्रियों को खुदबखुद उपयोग में लाना सीखें। अब यह सवाल हो सकता है कि प्रारम्भिक शिक्षणालयों की उच्च-श्रेणियों में किस विषय का कितना भाग सिखला दिया जाता है - पर हम इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहते इसके लिए इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि जब विद्यार्थी अपनी आठ वर्षों की शिक्षा समाप्त कर पाठशाला से बाहर निकलता है तब उसे अपनी मातृ भाषा का ज्ञान अच्छी प्रकार से हो जाता है, तथा उसमें गोटे, शिलर, लेसिंग आदि स्वदेशी कवियों की सुबोध कविता समझने और अन्य ग्रन्थों के पढ़ने की रुचि उत्पन्न हो जाती है। इसके सिवा वह नीचे लिखी हुई बातों का ज्ञान भी प्राप्त कर चुकता है। यथा—त्रैराशिक, ब्याज और व्यवहार गणित आदि योग्य ज्ञान, भूगोल का परिचय स्वदेश के विषय में जियादा तथा परदेश के विषय में कुछ कम, साधारणतः स्वदेश के इतिहास तथा शासन पद्धति का स्थूल ज्ञान, नित्य के व्यावहारिक पदार्थ

यथा प्राणी, धनस्पति, यन्त्र-शास्त्र और रसायन का स्थूल परिचय, ड्राइङ्ग में धूप और छाया का महत्व, फल, फूल, वृक्ष आदि को भिन्न २ या किसी समूह से जुदा कर सकना इत्यादि।

सप्ताह में दो घण्टे शारीरिक शिक्षा दी जाती है, जिससे कि वे सुदृढ़ शरीर तथा बलवान् मन वाले निकलें। बालकों की बार बार शारीरिक जाँच के लिए वैद्य (डाक्टर) नियत हैं। वे बालकों की जाँच करके रोगी बालक को उपयुक्त औषध देते हैं। यदि किसी बालक को कोई आनुवंशिक या स्पर्शजन्य रोग होता है तो उसके द्वारा अन्य बालकों को बाधा न पहुंचने के खयाल से उसको उस दवाखाने में भेज देते हैं जो खासकर गरीबों के लिए खोला गया होता है। जर्मनी में बालकों को पुरस्कार का लोभ दिखाकर पाठशाला की हाजिरी पूरी करने की घातक चाल नहीं है, क्योंकि इसके कारण यह पाया गया है कि होशियार लड़के पाठशाला की हाजिरी पूरी करने के लिए छोटे-मोटे रोगों की उपेक्षा कर जाते हैं और पश्चात् वेही रोग अधिक बढ़कर उनको भयङ्कर कष्ट में डाल देते हैं। इस प्रकार का मत यहां के कुछ शाला डाक्टरों ने प्रकट किया है, किन्तु जर्मनी में इस प्रकार की हानि होने की सम्भावना ही नहीं है।

आचार-शिक्षा।

जर्मनी के प्रारम्भिक शिक्षणालयों में आचार शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाता है। इसके लिए कोई अलग पुस्तक तथा समय नियत करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि पाठ्य प्रणाली में धार्मिक-शिक्षा आवश्यक होने के कारण उसका इसी में समावेश हो जाता है। शिक्षक प्रति सप्ताह एक बार अपनी कक्षा के सम्पूर्ण बालकों को लेकर वन में या निकटवर्ती

किसी अवलोकनीय स्थान पर जाया करता है। बालकों के आचार-विचार पर इसका बहुत अच्छा और गहरा प्रभाव पड़ता है। इसके सिवा सब विद्यार्थियों की ओर से उनके गरीब और अनाथ सहपाठियों के लिए 'मूफिकालिशर आबेंड' अर्थात् 'सङ्गीत की सन्ध्या' नामक सभा होती है। इस प्रकार की सभायें कराके खेल ही खेल में उन्हें सहकारिता, परोपकार आदि की शिक्षा दी जाती है।

'हिल्फस शूल।'

जर्मनी की प्रारम्भिक शिक्षा के प्रबन्ध में एक बात विशेष उल्लेखनीय है। वह यह कि जो बालक योग्य दवादारू न होने के कारण या माता पिता के जन्म रोगी होने के कारण साधारण विक्षिप्त या मन्दबुद्धिवाले होते हैं और कक्षा में अपने अन्य सहयोगियों के साथ चलने में असमर्थ होते हैं, उनके लिए कोई २५-३० वर्षों से पाठशाला का प्रबन्ध पृथक् कर दिया गया है। ऐसी ही पाठशाला को 'हिल्फस शूल' कहते हैं। फोल्क्स शूल की एक वर्ष की पढ़ाई में जब ज्ञान हो जाता है कि अमुक विद्यार्थी मन्दबुद्धिवाला है तब उसे हिल्फस शूल में भेज देते हैं। उसकी अष्टवर्षीय शिक्षा उसी पाठशाला में पूरी होती है, किन्तु लड़कों की बुद्धिमन्दता पर ध्यान देकर उसमें कुछ कुछ परिवर्तन कर दिया गया है। उदाहरणार्थ —बालकों को प्रथम वर्ष सब से निचली कक्षा में केवल दस तक अङ्क सिखलाये जाते हैं तथा सङ्ख्या की अमूर्त्त कल्पना को मस्तिष्क में स्थान देने के लिए उसे किसी मूर्त्तस्वरूप में दिखलाते हैं। प्रथम शिक्षक अपनी पाँचों अँगुलियाँ मेज पर रखता है और तदनुसार विद्यार्थी भी रखता है। इसके बाद शिक्षक

अपनी एक एक एक अँगुली क्रमश उठाता है और तदनुसार विद्यार्थी भी उसका अनुकरण करता है। अँगुलियों को उठाते हुए क्रमश विद्यार्थी से 'एक' 'दो' का उच्चारण कराया जाता है। पुन उसी प्रकार एक एक करके मेजपर अँगुलियाँ रखवाई जाती हैं। सिपाही, घोडे आदि के भिन्न २ रङ्ग के चित्र, दो दो, चार चार, एकत्र मिलाकर रख देते हैं और बाद में विद्यार्थी से गिनवाये जाते हैं। स्पर्श द्वारा, अथवा बारम्बार सुनाकर कर्णेन्द्रिय द्वारा, अथवा अनेक प्रकार के पदार्थ दिख लाकर नेत्रेन्द्रिय द्वारा, इतना ही नहीं किन्तु हर एक बाह्य इन्द्रिय के द्वारा उसके मस्तिष्क में चेतनता उत्पन्न करके उसके मनपर किसी बात के प्रभाव डालने का प्रयत्न किया जाता है। यह सत्य है कि शिक्षकों के लिए इस प्रकार का अध्यापन-कार्य्य जरा कष्टदायक होता है तथापि उसके बदौलत बडे आश्चर्यकारक सुपरिणाम होते हैं। यदि इतनी कोशिश के उपरान्त भी किसी बालक के मस्तिष्क में चेतना उत्पन्न नहीं होती या कुछ इष्ट परिणाम नहीं होता, तो फिर मजबूरन वह बालक ग्राम पञ्चायत द्वारा पागलखाने में भिजवाया जाता है। मैंने लाइप्झिक नगर में इस प्रकार की एक भव्य पाठशाला देखी, जिसमें पाँच सौ विद्यार्थियो के पढने का उत्तम प्रबन्ध किया गया था। इनमें से कोई ढाइ सौ लडकों के भोजनादि का प्रबन्ध पाठशाला की ओर से मुफ्त किया गया है। क्योंकि अधिकाश बालकों को उत्तम भोजनादि न मिलने के कारण ही उनके मस्तिष्क निर्बल और मन्द रहते हैं। अनेक बालकों को शुद्ध और निरोगी दूध पीने को दिया जाता है। सन् १९०६ में प्रशिया में इस प्रकार की पाठशालाओं की सख्या कोई २०० के ऊपर और केवल बर्लिन नगर में ३० थीं।

'वाल्ड शूल।'

नगर निवासी उन बालकों के लिए, जिनका शरीर अशक्त है, कहीं २ नगर से कुछ दूर वनों में, जहाँ का जल वायु शुद्ध रहता है, एक प्रकार की पाठशालाएँ खुली हुई हैं। इनको 'वाल्ड शूल' कहते हैं। इसका उद्देश केवल यही है कि बालकों को पर्याप्त शुद्ध वायु मिले और परिश्रम द्वारा उनके शरीर सुदृढ़ हो तथा वे साथ ही साथ विद्या ग्रहण भी कर सकें। नगर निवासी अशक्त तथा गरीब बालकों के आने-जाने और निवास का अधिकांश व्यय राज्य की ओर से किया जाता है।

फोल्क्स शूल में भी आठ श्रेणियां रहती हैं किन्तु ग्रामों की बात इससे कुछ निराली है। ग्रामों में श्रेणियों की संख्या जन-समुदाय और द्रव्य की हैसियत से तीन तक भी रह सकती है। पाठशाला का मकान, सामान तथा अन्य आवश्यक सामग्री पहले से नियमानुसार नियत कर दी जाती है। शिक्षक भी ऐसे नियत होते हैं जो अपने अपने विषय का पूर्ण अध्ययन ट्रेनिंग कालेज में किये होते हैं। ट्रेनिंग कालेज की शिक्षा ६ वर्ष की होती है; परन्तु प्रशिया में केवल ३ ही वर्ष की होती है।

अध्यापकों का वेतन।

अध्यापक को नियुक्त होते ही प्रथम २४०० मार्कस (१२ आने का १ मार्क होता है) वेतन मिलता है। इस वेतन में ६०० मार्कस् मकान किराया के भी सम्मिलित है। इसके पश्चात् उसके वेतन में, जब तक कि २७ वर्ष पूर्ण न हो, ८६०० मार्कस् तक वृद्धि हो सकती है। पाठशाला के मुख्या

अपनी एक एक एक अँगुली क्रमश उठाता है और तदनुसार विद्यार्थी भी उसका अनुकरण करता है। अँगुलियों को उठाते हुए क्रमशः विद्यार्थी से 'एक' 'दो' का उच्चारण कराया जाता है। पुन उसी प्रकार एक एक करके मेजपर अँगुलियाँ रखवाई जाती है। सिपाही, घोडे आदि के भिन्न २ रङ्ग के चित्र, दो दो, चार चार, एकत्र मिलाकर रख देते हैं और बाद में विद्यार्थी से गिनवाये जाते हैं। स्पर्श द्वारा, अथवा बारम्बार सुनाकर कर्णेन्द्रिय द्वारा, अथवा अनेक प्रकार के पदार्थ दिखलाकर नेत्रेन्द्रिय द्वारा, इतना ही नहीं किन्तु हर एक बाह्य इन्द्रिय के द्वारा उसके मस्तिष्क में चेतनता उत्पन्न करके उसके मनपर किसी बात के प्रभाव डालने का प्रयत्न किया जाता है। यह सत्य है कि शिक्षकों के लिए इस प्रकार का अध्यापन-कार्य्य जरा कष्टदायक होता है तथापि उसके बदौलत बडे आश्चर्यकारक सुपरिणाम होते हैं। यदि इतनी कोशिश के उपरान्त भी किसी बालक के मस्तिष्क में चेतना उत्पन्न नहीं होती या कुछ इष्ट परिणाम नहीं होता, तो फिर मजबूरन वह बालक ग्राम पञ्चायत द्वारा पागलखाने में भिजवाया जाता है। मैंने लाइप्झिक नगर में इस प्रकार की एक भव्य पाठशाला देखी, जिसमें पाँच सौ विद्यार्थियों के पढने का उत्तम प्रबन्ध किया गया था। इनमें से कोई ढाई सौ लडकों के भोजनादि का प्रबन्ध पाठशाला की ओर से मुफ्त किया गया है। क्योंकि अधिकांश बालकों को उत्तम भोजनादि न मिलने के कारण ही उनके मस्तिष्क निर्बल और मन्द रहते हैं। अनेक बालकों को शुद्ध और निरोगी दूध पीने को दिया जाता है। सन् १९०६ में प्रशिया में इस प्रकार की पाठशालाओं की संख्या कोई २०० के ऊपर और केवल बर्लिन नगर में ३० थी।

'वाल्ड शूल ।'

नगर निवासी उन बालकों के लिए, जिनका शरीर अशक्त है, कहीं २ नगर से कुछ दूर वनों में, जहाँ का जल वायु शुद्ध रहता है, एक प्रकार की पाठशालाएँ खुली हुई हैं। इनको 'वाल्ड शूल' कहते हैं। इसका उद्देश केवल यही है कि बालकों को पर्याप्त शुद्ध वायु मिले और परिश्रम द्वारा उनके शरीर सुदृढ़ हों तथा वे साथ ही साथ विद्या ग्रहण भी कर सकें। नगर-निवासी अशक्त तथा गरीब बालकों के आने-जाने और निवास का अधिकांश व्यय राज्य की ओर से किया जाता है।

फोल्क्स शूल में भी आठ श्रेणियां रहती हैं किन्तु ग्रामों की शान इससे कुछ निराली है। ग्रामों में श्रेणियों की संख्या जन-समुदाय और द्रव्य की हैसियत से तीन तक भी रह सकती है। पाठशाला का मकान, सामान तथा अन्य आवश्यक सामग्री पहले से नियमानुसार नियत कर दी जाती है। शिक्षक भी ऐसे नियत होते हैं जो अपने अपने विषय का पूर्ण अध्ययन ट्रेनिंग कालेज में किये होते हैं। ट्रेनिंग कालेज की शिक्षा ६ वर्ष की होती है, परन्तु प्रशिया में केवल ३ ही वर्ष की होती है।

अध्यापकों का वेतन।

अध्यापक को नियुक्त होते ही प्रथम २४०० मार्क्स (१२ आने का १ मार्क होता है) वेतन मिलता है। इस वेतन में ६०० मार्क्स मकान किराया के भी सम्मिलित है। इसके पश्चात् उसके वेतन में, जब तक कि २७ वर्ष पूर्ण न हों, ४५०० मार्क्स तक वृद्धि हो सकती है। पाठशाला के मुख्या-

ध्यापक (हेडमास्टर) को ८८०० से ६८०० मार्कस् तक वेतन मिलता है। इसमें भी मकान किराया के ६०० मार्क सम्मिलित हैं। यदि यूरोप के व्यय की ओर ध्यान दिया जाय तो यह वेतन कुछ अधिक नहीं है।

पाठशालाओं का व्यय।

यह इतना व्यय कौन देता है? यदि यह कहो कि सम्पूर्ण व्यय फीस के द्वारा प्राप्त होता है, तो यह कहना पड़ेगा कि जर्मनी में प्रारम्भिक शिक्षा नि शुल्क दी जाती है। कुछ नगरों में केवल नाममात्र के लिए फीस ली जाती है, सो भी एक वर्ष में केवल ८ मार्क। हां, कुछ नगरों में उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों के लिए 'ब्युर्गर शूल' नामक पाठशालाएँ स्थापित हैं, जिनमें ४० मार्क वार्षिक फीस ली जाती है। किन्तु इस आय से एक दशांश व्यय की पूर्ति भी नहीं हो सकती है। लाइपझिक नगर में इस प्रकार की फीस लेनेवाली पाठशालाएँ प्रचुर रूप से विद्यमान हैं, तो भी वहाँ की शिक्षा का व्यय ८२ लाख मार्क तक पहुंच जाता है, किन्तु फीस की आय १८ लाख से ऊपर नहीं बढ़ती। अतएव लाइपझिक नगर की ग्राम पञ्चायत ही इस शेष ६४ लाख व्यय की रकम देती है। प्राय अन्य नगरों का भी यही हाल है। ये नगर सरकारी सहायता की अपेक्षा नहीं रखते। हाँ, कई एक ग्राम ऐसे भी हैं, जिनको राज्य की द्रव्यादि से सहायता करनी आवश्यक होती है। इसके सिवा कुछ ग्राम ऐसे भी हैं, जहाँ का सब खर्च सरकार को ही उठाना पड़ता है। जर्मनी में शिक्षा के लिए जितना व्यय होता है, उसके केवल तीसरे हिस्से से कुछ अधिक सरकार को व्यय करना पड़ता है। सन् १९०६ में

प्रशिया के बड़े नगरों को छोड़कर केवल ग्रामों में शिक्षा पर १५ करोड मार्क खर्च हुआ, जिसमें कोई ५½ करोड़ मार्क राज्य-निधि से दिया गया। अर्थात् राज्यने प्रति सैकडा ३८ खर्च किया। बड़े नगरों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए कुल १६ करोड मार्क व्यय हुए, जिसमें से राज्य निधि से केवल १ करोड ६० लाख मार्क सहायतार्थ दिये गये। इसी साल वेव्हेरिया प्रान्त का शिक्षा व्यय ४ करोड ८६ लाख मार्क हुआ, जिसमें से १ करोड २३ लाख मार्क राज्य की ओर से दिया गया, अर्थात् राज्य ने प्रति सैकडा २५.५ व्यय किया।

सक्सनी रियासत बहुत छोटी है, किन्तु शिक्षा के विषय में यह पहले से ही सब से आगे बढ़ी हुई है। वहाँ अब यह हालत हो गई है कि जनता शिक्षा का तथा उसके व्यय का सम्पूर्ण भार सहर्ष उठाने लग गई है। यह बात सन् १९०४ के अङ्कों से भली प्रकार ज्ञात हो जायगी। वहाँ पर कोई ४२८५ प्रारम्भिक पाठशालाएँ हैं और उस साल इनके लिए कुल ४½ करोड मार्क व्यय हुए थे, जिसमें से राज्य को केवल ५ लाख मार्क ही सहायतार्थ देने पड़े। शेष रकम ग्राम-पञ्चायतों की ओर से खर्च की गई। हाँ ट्रेनिंग कालेजों का कुल खर्च सरकार को करना पड़ता है। सन् १९११ में प्रशिया के ट्रेनिंग कालेजों में १ करोड ४४ लाख मार्क, तथा सन् १९०४ में सेक्सनी में १९½ लाख मार्क राज्य की ओर से खर्च हुए। इस तरह से इन राज्यों ने प्रथम तो शिक्षा का कुल व्यय स्वय उठाकर सर्वसाधारण जनता को ज्ञानवान् बनाया और इसी से अब इन राज्यों को शिक्षा में अपनी ओर से केवल एक तिहाई से अधिक व्यय करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रशिया के नगरों में प्रति विद्यार्थी वार्षिक ७१ मार्क और ग्रामो

में ४० मार्क शिक्षा में खर्च होता है, तथा बेवेरिया में यही व्यय ५० ७ मार्क और सक्सनी में ५० मार्क होता है।

पाँचवाँ अध्याय।

'फोर्ट विल्डुंग शूल।'

प्रारम्भिक शिक्षा का वर्णन समाप्त करने के पूर्व एक और बात का उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। वह यह कि प्रारम्भिक शिक्षा की पूर्णता करने के हेतु जिन 'फोर्ट विल्डुंग शूलो' की स्थापना हुई है, उसका भी परिचय करा दिया जाय। हम इनको अपनी भाषा में 'प्रागतिक पाठशाला' (कण्टिन्युएशन स्कूल्स) कह सकते हैं। जिस समय बालक अपनी उम्र के १४ वें वर्ष प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर बाहर निकलता है, यदि वह उसी समय किसी आजीविका के उपार्जन में लग गया तो उसके आठ वर्ष के सब पढ़े-पढ़ाये पर पानी फिर जावेगा, तथा कुछ दिनो के बाद यह भी मालूम न देगा कि उसने कुछ शिक्षा पाई है या नहीं। दूसरे, एक बात यह भी है कि इस उम्र में लड़का किसी भी धन्धे में प्रवेश करने योग्य नहीं रहता है। इन सम्पूर्ण बातो पर विचार करके सुप्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्र-निपुण महाशय पेस्टालोजी ने इन पूर्णत्व की पाठशालाओं की सृष्टि की थी। इन पाठशालाओं से एक बड़ा भारी लाभ यह होता है कि यदि कोई लड़का किसी उद्योग धन्धे के सीखने के लिये किसी धन्धेवाले के या व्योपारी के पास रह भी जाय, तो इन पाठशालाओं की बदौलत उसका प्राप्त ज्ञान मलिन न होते उत्तरोत्तर बढ़ता जाता

है। जब महाशय पेस्टालोजी ने इस प्रकार की कल्पना का आविष्कार किया था, तब उसकी यह कल्पना पहलेपहल कुअरहेसेन नामक एक छोटीसी रियासत में कार्य्यरूप में परिणत हुई थी। इसके पश्चात् शान्ति के काल में ज्यों ज्यो उद्योग-धन्धो की वृद्धि होती गई, त्यो त्यो उन विषयो की तत्त्व-दृष्टि से शिक्षा देना आवश्यक प्रतीत होने लगा। इसके लिए फोर्ट बिल्डुँग शूल एक उत्तम साधन मिल गया। इस समय इन पाठशालाओं में भाषादि विषय तो गौण रूप से पढाये जाते है, परन्तु सुतारी, लुहारी, दर्जीगिरी, चमारी, पाक-शास्त्र आदि हस्त कौशल के छोटे छोटे धन्धे तथा लेखक, बहीखाता दूकानदारी, लघु व्यापार आदि के लिए आवश्यक ज्ञान विशेष रूप से सिखलाया जाता है। समय दो पहर का नियत है, और वह भी सप्ताह में कुछ दिन। इन पाठशालाओं की उपयुक्तता देखकर व्यापारीगण तथा उद्योग धन्धेवाले लोग अपने समीप काम सीखने के लिए रहे हुए उम्मेदवारो को बडी खुशी से इन पाठशालाओं में भेजने का अवकाश देने लगे। किन्तु कुछ दिनो बाद शिक्षा विभाग ने प्रस्ताव पास कर दिया कि "हर-एक विद्यार्थी को प्रारम्भिक-शिक्षा समाप्त किये बाद चार वर्ष तक फोर्ट बिल्डुँग शूल में पढ़ना आवश्यक है।" सेक्सनी रियासत में यह प्रस्ताव गत शताब्दि के उत्तरार्ध में कार्य्य में परिणत हो चुका था। केवल प्रशिया ही इन छोटी २ रियासतो से पीछे रह गया था, परन्तु वहा पर भी अब ऐसा प्रस्ताव पास हो चुका है तथा उसका अमल भी शुरू हो गया है। किन्तु प्रशिया में समय की मर्यादा केवल दो वर्ष की रक्खी गई है। इसके सिवा जर्मनी की पार्लियामेण्ट ने अब व्यापारी, दस्तकार और उद्योग धन्धेवालो के लिए भी ऐसा प्रस्ताव

पास कर दिया है कि "उन लोगों को अपने आश्रय में काम सीखने के लिए रखे हुए बालकों को उपयुक्त शिक्षा-प्राप्ति के लिए नियमित समय देना ही चाहिए।" उपरोक्त पाठशालाएँ केवल उद्योग-धन्धों की शिक्षा ही नहीं देतीं, बल्कि उनका लक्ष्य यह रहता है कि विद्यार्थी को साधारण शिक्षा के साथ साथ उद्योग-धन्धों की मोटी मोटी बातें विदित हो जायँ। जर्मन भाषा, गणित, भूमिति तथा ड्राइङ्ग ये चार विषय साधारणतया आवश्यक हैं। केवल एक सेक्सनी राज्य में ही इस प्रकार के स्कूलों की संख्या १८०० से ऊपर हैं। इस प्रकार से बालक की उम्र के छठवें वर्ष से चौदहवें वर्ष के अन्ततक फोटन्स शूलों में, और इसके बाद २ से ४ वर्ष तक फोर्ट बिल्डुंग शूलों में शिक्षा मिलती है। एकन्दर १२ वर्ष तक साधारण से साधारण और गरीब बालकों को भी प्रारम्भिक-शिक्षा मिल जाती है। इसके बाद उन्हें दो वर्ष तक सेना में नौकरी करनी पड़ती है। इस प्रकार से जर्मनी के प्रारम्भिक-शिक्षणालय हरएक बालक को भाषा, इतिहास, गणित आदि विषयों का उत्तम ज्ञान कराकर, किसी उद्योग-धन्धे का काम भी सिखा देते हैं। अतएव विद्यार्थी जब इस सम्पूर्ण शिक्षा को प्राप्त कर शिक्षणालय से बाहर निकलता है तब वह सब तरह से व्यवहार के योग्य तथा जीवन संग्राम में होशियारी एवं तैयारी से प्रवेश करने योग्य होता है। उसके मन पर सुशिक्षा के पर्याप्त संस्कार हो जाने के कारण वह हरएक कार्य्य में प्रवेश करने योग्य हो जाता है।

बालोद्यान-पद्धति (किण्डरगार्टन्)।

जर्मनी की प्रारम्भिक शिक्षा का परिचय 'किण्डरगार्टन्' शिक्षा के बिना अधूरा ही रहेगा। अतएव हम इसके विषय में दो चार शब्द लिखे देते हैं। 'किण्डरगार्टन्' शब्द का अर्थ 'बालकों का बगीचा' या 'बालोद्यान' होता है। पहलेपहल इस शिक्षा की कल्पना महाशय पेस्टालोज़ी ने ही की थी, परन्तु पीछे महाशय फ्रोबेल ने उस कल्पना को कार्य में परिणत कराया। उसने ऐसी पाठशाला की स्थापना की, कि जिसमें बच्चा खेल ही खेल में अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ शिक्षा प्राप्त करले और उसे पाठशाला और घर में कोई अन्तर मालूम न हो। यह प्रबन्ध केवल उन छोटे २ बच्चों के लिये किया गया था, जिनकी उम्र ३ से ८ वर्ष के भीतर है। यदि सच पूछा जाय तो इस शिक्षा में बालकों की अपेक्षा शिक्षक को ही अधिक श्रम करना पड़ता है। क्योंकि उन छोटे छोटे बच्चों के साथ रहना, उनको पढ़ाई का समय कष्टदायक मालूम न होने देना, खेल ही खेल में अक्षरों का ज्ञान, कुछ थोड़ा भूगोल, सहकारित्व तथा पालतू पशुओं की आदतें पहचान कर उनसे प्रेमयुक्त व्यवहार करवाना, इत्यादि कार्य्य बड़ी कठिनाई से सिखलाये जा सकते हैं। इस कार्य्य को वही अध्यापिका कर सकती है जो 'पेस्टालोज़ी-फ्रोबेल-हाउस' में शिक्षा पाई हो। एक बार मैं दक्षिण के सागर जिले की एक प्रारम्भिक पाठशाला देखने गया था। मैंने वहाँ पर देखा कि एक शिक्षक को माला तथा गोलियों के द्वारा बच्चों को संख्या का ज्ञान करानेमें बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी। मुझे यह देखकर बड़ा शोक हुआ कि इस पद्धति

बड़ी बुरी तरह से दुरुपयोग किया जाता है। इस पद्धति के दो सिद्धान्त विशेष स्थान देने योग्य है। प्रथम तो यह कि प्रत्यक्ष वस्तुओं द्वारा वस्तु का ज्ञान करवाना, और द्वितीय आँख, कान, हाथ आदि इन्द्रियों के उपयोग या अवलोकन द्वारा बच्चों को ज्ञान सम्पादन करने की प्रवृत्ति करा देना। इन दो तत्त्वो पर शिशुओं के लिए जो पाठशालाएँ स्थापित होती हैं उनकी कक्षा में और एक साधारण परिवारवाले के घर के किसी कमरे में कोई अन्तर प्रतीत न होगा। यह केवल पेस्टा लोजी और फ्रोबेल की उस कल्पना का फल है कि 'पाठ शालाएँ घरके नमूने पर बननी चाहिएँ।' साधारणतया इन पाठशालाओं की रचना ऐसी सुन्दर होती है कि कहीं पर तो खिड़कियो में पौधो के कुण्डे रखे हुए हैं और कहीं पींजरों में अनेक प्रकार के पक्षी टँगे हुए हे। कहीं दीवारो पर कुत्ते, बिल्ली और ऐसे ऐसे प्राणियो के चित्र लटके हुए हे जो सर्वदा मनुष्य के साथ रहते है। वृक्षों को पानी पिलाना, पक्षियो को दाना देना, अपना कमरा झाड़ीपाली से साफ करना, प्रात काल के फलाहार की तैयारी करना, कपडे की चिन्दियो की पुतलियाँ तथा घोडे आदि बनाकर फिर उनको गिनना और उनके साथ खेलना, दीवार के चित्रों को देखकर किसी एक के विषय में कहानी कहना, तख्ते पर अक्षरो को निकाल कर उन्हें पढ़ना इत्यादि अनेक बातों में बालको का मनोरञ्जन भी होता हे तथा उन्हें शिक्षा भी मिल जाती है। इन पाठशालाओं की अध्यापिकाएँ अपनी श्रेणी के बच्चों के साथ बडा ही प्रेमपूर्ण बर्ताव करती हैं। बच्चे भी अपनी अध्यापिका को 'टाण्ट' अर्थात् मौसी कहकर पुकारते हैं। पाठशाला के चारो ओर बगीचा रहता है, जिसमें बच्चे अपनी टाण्ट के साथ भूमि खोदते हैं,

फिर उसमें बीज बोते हैं, और जब पौधे निकलकर उनमें फल फूल आने लगते हैं तब बड़े खुश होकर नाचते कूदते हैं। इस प्रकार से उनका समय जहाँ आनन्दपूर्वक व्यतीत होता है, वहाँ साथ ही साथ उनको अप्रयत्न रीति से उपयुक्त शिक्षा भी मिल जाती है। खेलने के लिए एक अलग मैदान रहता है, जिसमें बालू-रेत बिछी होती है। उस मैदान में ये बालक प्रथम तो अपनी टाएट के साथ गाना गाते हुए फिरते हैं, तथा गिनती बोलते हुए कवायद करते हैं। हर एक बालक यह समझता है कि मेरी पाठशाला टाएट के साथ खेलने की तथा अपना आनन्द व्यक्त करने को एक जगह है। इन पाठशालाओं का समय सुबह ८ या ६ बजे से शाम के ४ बजे तक का रक्खा गया है। इस समय के बीच में बच्चे इच्छानुसार खेलते-कूदते हैं और कभी अपने घर का स्मरण भी नहीं करते। ये टाएट अर्थात् अध्यापिकाएँ अपने अपने काम में बड़ी निपुण होती हैं। वे बड़ी बुद्धिमत्ता से बच्चों के लिए काम की ऐसी योजनायें करती हैं कि जिनके द्वारा उन्हें कुछ उपयुक्त शिक्षा भी मिल जाय और वे उस समय को आनन्द के साथ व्यतीत कर सकें। ये अध्यापिकायें इस बात की भी बड़ी कोशिश करती हैं कि जिससे बालकों की बुद्धि विकसित हो तथा उनके शरीर सुडौल और सुदृढ बनें। इस प्रकार की 'किण्डरगार्टेन' पाठशालाएँ जर्मनी में हर एक स्थान पर प्रचुरता के साथ खुली हुई हैं।

बालोद्यान पद्धति से शिक्षा देनेवाली अध्यापिकाएँ तैयार करने के लिए बर्लिन में 'पेस्टालोजी फ्रोबेल हाउस' नाम की एक बड़ी भारी संस्था है। उसीके आदर्श पर जर्मनी के कई नगरों में ऐसी कई पाठशालाएँ खुली हुई हैं। बर्लिन

कीसस्था स्वय फ्रोबेल ने अपने हाथों से स्थापित की थ
उसका स्थापन-समय सन् १८६७* है। आजकल इस सस
का सब कार्य्य एक गंभीर और विदुषी स्त्री के हाथ में
उसने इस सस्था की बहुत कुछ उन्नति की है। स
१९११ में इस सस्था में कोई १५० विदेशी महिलाएँ किंड
गार्टन पद्धतिक सप्रयोग सीखने आई थीं। विदेशी महिला
फ्रान्स, ग्रेटब्रिटन, इटली, रशिया, यूनाइटेड स्टेटस् आ
भिन्न भिन्न देशों से आई हुई थीं। उनके भोजनादि का कु
प्रबन्ध इसी सस्था में किया गया था।

---

* यह बात प्रसिद्ध है कि म० फ्रोबेल का जन्म सन् १७८२ में हुआ,
और मृत्यु सन् १८५२ में। अतएव १७६७ का सन् गलत प्रतीत होता है

—अनुवादक।

द्वितीय भाग।

पहला अध्याय।

माध्यमिक शिक्षा।

जर्मनी की माध्यमिक शिक्षा का विचार करते हुए यदि उसकी उत्पत्ति और वृद्धि का विस्तारपूर्वक इतिहास लिखा जाय तो वह कोई लाभकारी तथा सुबोध न होगा। अतएव हम उसका संक्षेप में वर्णन किये देते हैं —

यूरोप में जिस समय को 'मिड्ल् आल्टर' (अँ मिडल एजेस) अर्थात् 'मध्य युग' कहते हैं उस समय माध्यमिक शिक्षा का सब प्रबन्ध धर्माधिकारियों के हाथ में था। इन धर्माधिकारियों के प्रत्येक मठ में एक एक माध्यमिक पाठशाला रहती थी और प्रारम्भ से अन्ततक लैटिन और ग्रीक भाषाएँ सिखलाई जाती थीं। इस शिक्षा का केवल यही उद्देश होता था कि अरिस्टाटल के न्याय के समान, या उस शास्त्र को उस समय जिस दृष्टि से देखा जाता था उसके समान, पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष में वादविवाद करनेवाले निपुण पंडित तैयार किये जायँ। अतएव आरम्भ में लैटिन भाषा और व्याकरण के शब्द कंठस्थ करने, कविता तथा वाक्यों को रट लेने आदि बातों पर ही सब शिक्षा निर्भर होती थी। जिस प्रकार हमारे देश में छोटे २ लड़कों से रूपावली, अमरकोश तथा समासचक्र आदि कंठस्थ कराने की पुरातन शैली है, उसी प्रकार की शैली जर्मनी में मध्य युग में थी। इसके पश्चात् जब धर्म क्रांति हुई तब माध्यमिक शिक्षा के सूत्र धर्माधिकारियों के

हाथ से निकल गये यद्यपि वे शिक्षा सूत्र वर्तमान युग के समान राज्य के या जनसमूह के हाथ में अधिकांश रूप में नहीं आये थे, तथापि उनमें स्वयसिद्धता विशेष रूप से आ गई थी। पहले की मठाधिकारियों की लैटिन पाठशालाओं का 'गिम्नासिउम्' में रूपान्तर हो गया। इस गिम्नासिउम् का भी सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दि तक यही एक प्रधान उद्देश रहा था कि ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं में सिसरो के समान ग्रन्थकार और वक्ता तैयार किये जायें। गिम्नासिउम् में शिक्षा की अवधि दस वर्ष की थी। केवल प्रथम वर्ष तो मजबूरन जर्मन भाषा तथा उसके द्वारा सब शिक्षा दी जाती थी, परन्तु इसके पश्चात् सब व्यवहार लैटिन भाषा के द्वारा चलता था। यही रीति हमारे देश में इतनी कृत्रिम स्वाभाविक हो गई है कि यदि कोई मनुष्य सब शिक्षा देशी भाषाओं द्वारा देने का नाम लेता है तो अनेक मनुष्यों की एडी से लगाकर मस्तक तक आग पहुँच जाती है। खैर, प्रथम वर्ष के छ महीने व्याकरण और शब्द रटवाने में खर्च करके शेष समय लैटिन भाषा के 'सिसरो के पत्र' नामक ग्रन्थ के पढने में लगा दिया जाता था और तीसरे वर्ष के प्रारम्भ होते ही बालकों से लैटिन में वार्तालाप करवाया जाता था। केवल इसी बात पर से विज्ञ पाठक अनुमान कर लेंगे कि इन मृत-भाषाओं के अध्ययन में बालकों का कितना रक्त सूख जाता रहा होगा। पाचवें वर्ष का आरम्भ होते ही लैटिन की जोड में ग्रीक भी आ बैठती थी और बाद में छ वर्ष तक सब शिक्षा इन दोनो भाषाओं द्वारा दी जाती थी। पाठकगण सहज में अनुमान कर लेंगे कि यह शिक्षा कितनी सकुचित और अपर्याप्त थी।

अठारहवीं शताब्दि में राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में जो २ परिवर्तन हुए एवं जैसे जैसे आधुनिक विज्ञान की उन्नति होती गई वैसे वैसे इन जिम्नासिउम् का ध्येय भी बदलता गया। धीरे २ जनता को यह विश्वास होने लगा कि देश में केवल एकाङ्गी शिक्षा प्राप्त, तथा व्यवहारशून्य, एवं बदले हुए समय के अनुपयुक्त, जिम्नासिउम से निकले हुए अनेक पंडितो से कोई लाभ नहीं होता है। अब यह आवश्यकता दीखने लगी कि विद्यार्थियो को गणित की तथा आधुनिक विज्ञान में विस्तरित अनेक शास्त्रों की ओर व्यवहारोपयोगी अन्य विषयो की शिक्षा दी जावे। इन विषयो को 'रे आलीएन' *अर्थात् व्यवहारोपयोगी शास्त्र* कहते हैं। इस प्रकार की 'रे आलीएन को शिक्षा देनेवाली 'रे आलिएन' संस्था प्रथम ही प्रथम सन् १७४७ ई० में बर्लिन नगर में स्थापन हुई। इसके विषय में हमें आगे चल कर विस्तारपूर्वक लिखना है, परन्तु यहा पर इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि ध्येय बदलना चाहिये इस प्रकार की भावना जिम्नासिउम् के कट्टर अभिमानियो में भी उत्पन्न हो गई। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी हुई कि उस समय उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था अतएव इसलिए भी माध्यमिक शिक्षा का ध्येय उसके अनुकूल करना पड़ा। विश्वविद्यालयो में लैटिन और ग्रीक भाषा तथा उसमें का न्याय और तत्वज्ञान, इसी के साथ २ मातृभाषा और आधुनिक भाषाएँ तथा उनमें का साहित्य और तत्वज्ञान, और मुख्य कर प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र, आदि आधुनिक शास्त्रों की शिक्षा देने का काम बडी शीघ्र गति से प्रारम्भ हो गया था। पहलेपहल यह बात स्वीकार कर ली गई थी कि

'गिम्नासिउम् पाठशालाएँ विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के लिए प्रथम सीढ़ी है, इसीलिए इन दोनों के मध्य में जो कुछ विभिन्नता उत्पन्न होने की सम्भावना थी, उसको दूर करने का प्रयत्न हुआ। इस महान् कार्य को लगभग एक शताब्दि भर अनेक विद्वान्, कवि, तत्त्ववेत्ता, इतिहासज्ञ करते रहे, परन्तु उसका निश्चित् और अन्तिम स्वरूप एक महान् विद्वान् और प्रतिभाशाली मनुष्य के द्वारा मिलना था। वह मनुष्य सब विद्याओं में पारङ्गत और प्रसिद्ध बर्लिन युनिवर्सिटी का स्थापनकर्त्ता विल्हेल्म फान् हुम्बोल्ट था।

महाशय हुम्बोल्ट बड़े प्रतिभाशाली और राज्य कार्य धुरन्धर व्यक्ति थे। उस समय अनेकानेक भीतरी दोषों के कारण, तथा 'स्वतन्त्रता के लिए युद्ध' नामक लड़ाइयों के कारण जो कि नेपोलियन के साथ हुई थी, प्रशियन राज्य अत्यन्त बलहीन एवम् निःसत्व हो गया था और यह लक्षण प्रतीत होते था कि अब इस राज्य के डूबने में कोई कसर नहीं है। उस समय देश के जिन अनेक मनुष्यों ने राज्य को डूबने से बचाने की कोशिश की थी, उनमें से हुम्बोल्ट भी एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। उसने यह अच्छी तरह जान ली थी कि राष्ट्र की जनता सुशिक्षा सम्पादन करके राष्ट्र-कार्य को करने के लिए स्वयं उद्यत हो जावे, तो इसके बराबर राज्य को स्थिरता लाने वाली दूसरी कोई बात नहीं हो सकती। और इसीलिए उसने प्राचीन सदोष और एकाङ्गी शिक्षा को— विशेषकर गिम्नासिउम् को सुधारने का प्रयत्न किया। प्रथम उसने यह प्रतिपादन किया कि ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं का अध्ययन केवल शाब्दिक और ऊपर २ का सम्पादन न कर भ्रमर वृत्ति से उसके अन्दर का रसास्वाद लेना

चाहिये। उन भाषाओं की शिक्षा निर्जीव न बना कर रसिक वृत्ति से उसमें की सर्व श्रेष्ठ बातों का ग्रहण कर लेना चाहिए। इसके साथ ? उसने यह प्रबन्ध भी कर दिया कि शिक्षा में का एकाङ्गी दोष दूर करने के लिए आधुनिक भाषाओं में जो सर्व श्रेष्ठ साहित्य था, वह भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया। यदि उसने गिम्नासिउम् में सब से अच्छा और नया सुधार किया था तो वह यही था कि उसके पाठ्यक्रम में आधुनिक शास्त्रों की पढ़ाई सम्मिलित करा दी। इस प्रकार से गिम्नासिउम् की शिक्षा में सुधार करने के लिए उसने और उसके सहयोगी मित्रों ने अनेक प्रकार से कोशिश की और अब यह हो गया कि पहले जहां यह उद्देश था कि लैटिन और ग्रीक में वार्तालाप करनेवाले उन भाषाओं में लेख लिखनेवाले और वादविवाद करनेवाले पण्डित तैयार किये जायँ, वहाँ अब इस उद्देश की स्थापना हुई कि 'सब प्रकार से सर्वाङ्ग सुन्दर शिक्षा दी जाय।

सर्वाङ्ग-सुन्दर शिक्षा।

इस शिक्षा का प्रबन्ध इस प्रकार से हुआ कि पहले के ही समान गिम्नासिउम् की पढ़ाई का समय दस वर्ष का रक्खा गया, परन्तु पढाई के विषयों में आवश्यक फेरफार किया गया। पहले मुख्य कर लेटिन और उसके साथ ग्रीक पढाइ जाती थी, परन्तु अब उसकी जगह लैटिन, ग्रीक, जर्मन भाषा और गणित इस प्रकार से समान महत्व के चार विषय पाठशाला की निचली श्रेणी से प्रारम्भ होते थे। केवल एक ग्रीक भाषा सातवीं श्रेणी से प्रारम्भ होती थी अर्थात् पढाई के पिछले चार वर्षों तक पढ़ाई जाती थी। इन दस श्रेणियों में

प्रति सप्ताह प्रत्येक विषय में कितना समय दिया जाता था उसका लेखा इस प्रकार है—लैटिन ७६ घण्टे (अर्थात् प्रति श्रेणी को हर सप्ताह ७ या ८ घण्टे पड़ते हैं), ग्रीक ५०, जर्मन भाषा ४४, और गणित ६० घण्टे। इसके अतिरिक्त इतिहास और भूगोल ३० घण्टे, आधुनिक शास्त्र २० और धर्म के लिए २० घण्टे दिये जाते थे। हर एक श्रेणी में प्रति सप्ताह लगभग ३० घण्टे शिक्षा मिलती थी। यदि आजकल समय का हेर फेर आदि साधारण बातों को छोड़ दिया जाय तो कहना होगा कि जो शिक्षा क्रम उन्नीसवीं शताब्दि के पूर्वार्ध में स्थापन हुआ था, वही आजकल भी प्रचलित है, केवल मात्र उस समय वर्षों की संख्या जहां दस रक्खी गई थी, वहाँ अब नौ कर दी गई है।

पहले की लैटिन पाठशालाएँ लैटिन वक्तृता तथा कुछ थोड़ी सी ग्रीक भाषा सिखलाती थीं, परन्तु अब नूतन जिम्नासिडम् सब प्रकार की शिक्षा देने का अभिमान करने लगी। जहां ग्रीक, लैटिन और जर्मन भाषाओं के द्वारा साहित्य-शिक्षा मिलती थी वहाँ गणित विज्ञान और इतिहास के द्वारा वैज्ञानिक और शास्त्रीय-शिक्षा मिलने लगी। परन्तु उस समय के अध्यापक पुरानी शैली से पढ़े हुए होने के कारण उनको गणित और शास्त्रादि विषयों का पढ़ाना एक तरह से कठिन एवं बाधक मालूम देने लगा और पुरानी भाषाओं को ही अधिक महत्व दिया जाने लगा। केवल पाठ्य-शैली में अन्तर पड़ गया था। अन्य विषयों में समय बँट जाने के कारण बालकों को पुरानी भाषाओं का अभ्यास स्वतन्त्रता से घर पर करना पड़ता था, और उन भाषाओं में निबन्ध लिखना एक बड़े महत्व का काम समझकर

थे उक्त विषयों की ओर अधिक ध्यान देने लगे। हम्बोल्ट के समान महानुभावों की इच्छा न होने हुए भी ये गिम्नासिउम् पाठशालाएँ पुन लेटिन और ग्रीक पाठशालाएँ बन बैठीं। इस विषय में सुधार और अनुसन्धान करने के लिए जर्मन सम्राट् ने सन् १८६० में एक कमिशन की नियुक्ति की थी, परन्तु कमिशन में भी सब सभासद् पुरानी रूढ़ि के कट्टर अभिमानी होने के कारण वे केवल मात्र यही कर सके कि लैटिन का एकाध घण्टा कम करके व्यायाम सरीखे विषय में दे दिया गया। इतना ही नहीं प्रत्युत उस समय जो 'रेआल् शूलेन' (लैटिन ग्रीक न सिखलानेवाली व्यवहारोपयोगी पाठशालाएं) की आश्चर्य जनक उन्नति होती जा रही थी उसकी योग्यता गिम्नासिउम् के समान मानने से कमिशन ने साफ इन्कार कर दिया' परन्तु सम्राट् के अध्यवसाय तथा बदली हुई परिस्थिति के कारण सन् १९०० और १६०१ में जो पुन कमिशन बैठा उसने अपनी सम्मति में रेआल शूलेन की योग्यता सब प्रकार से गिम्नासिउम् के समान ही ठहराई। इसके सिवा उसमें पढनेवाले विद्यार्थियो को य सुभीते भी दे दिये कि उसके विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में प्रवेश हो सकते है, तथा वे सरकारी नौकरियो के लिए होनेवाली परीक्षाओं में भी बैठ सकते हैं। इसके सिवा एक सुभीता यह भी कर दिया कि उसके विद्यार्थी सेना में एक वर्ष से अधिक 'व्हालटियर सर्विस' न कर सकेंगे।

वर्तमान का अध्ययनक्रम।

जब दोनों ही कमिशन की भट्टी में खूब तपा लिया गया, और बाद में जो निश्चित किया गया, वह अध्ययन क्रम आज

कल इस प्रकार का है—यह अध्ययनक्रम पूरा नौ वर्ष का है अर्थात् बालक की उम्र के ११वें वर्ष से आरम्भ होकर १९वें वर्ष समाप्त होता है। जिनकी साम्पत्तिक स्थिति अच्छी है और जो चाहते हैं कि हम गिम्नासिउम् में शिक्षा प्राप्त करें, उनको प्रारम्भिक पाठशाला में केवल ४ वर्ष तक ही पढ़ना पड़ता है, अर्थात् उनकी उम्र के छठे वर्ष से दसवें वर्ष तक फोल्कस शूल में पढ़कर वे ग्यारहवें वर्ष गिम्नासिउम् में जा सकते हैं। बालकों की उम्र के लिहाज से सप्ताहभर में २६ से ३२ घण्टों तक शिक्षा दी जाती है—धर्मशिक्षा २ घण्टे, जर्मन भाषा ३, लैटिन ८ से ६, इतिहास और भूगोल ३ गणित ४ घण्टे (अन्त के दो वर्षों में केवल अङ्कगणित, इसके बाद भूमिति और पश्चात् बीज गणित), सृष्टिज्ञान २ घण्टे (प्रथम साधारण वनस्पति शास्त्र, फिर प्राणिशास्त्र और बाद में रसायन और यन्त्र), ड्राइंग २ घण्टे (सबसे निचली दो श्रेणियों को इसकी जगह केवल शुद्ध लेखन और सीधी रेखाएँ खींचना आदि) और व्यायाम २ घण्टे (यह सब श्रेणियों के लिए समान रहता है)। ग्रीक भाषा चौथे वर्ष से आरम्भ होती है। उसको प्रति सप्ताह केवल ६ घण्टे ही दिये जाते हैं। वर्तमान के गिम्नासिउम् में फ्रेञ्च भाषा आवश्यक कर दी गई है। वह तीसरे वर्ष से प्रारम्भ होती है और उसको प्रति सप्ताह पहले पाच और पश्चात् तीन घण्टे दिये जाते हैं, यह कमिशन का नूतन सुधार है। इसके अतिरिक्त इंगलिश, इटालियन, हिब्रू आदि भाषाएँ और उच्च ड्राइङ्ग तथा लघुलेखन-कला वैकल्पिक विषय रक्खे गये हैं। अब यह स्पष्ट हो गया कि जहा लैटिन और ग्रीक भाषाओं को हर एक श्रेणी में प्रति सप्ताह १५ घण्टे दिये जाते हैं, वहा जर्मन और फ्रेञ्च आदि

आधुनिक भाषाओं को केवल ७ ही घण्टे मिलते हैं। पाठकगण अनुमान कर सकते हैं कि आजकल भी इन पाठशालाओं में प्राचीन भाषाओं का कितना अधिक प्रावल्य है। बालकों से स्वयं उनकी बुद्धिमत्ता से लैटिन में निबन्ध लिखवाने की रूढ़ि अभी तक प्रचलित है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जर्मन पण्डित इस समय तक भी पुरानी भाषाओं से पहले के समान चिपके हुए हैं।

शुल्क और परीक्षा।

गिम्नासिउम् का वार्षिक शुल्क लगभग ६० रुपये है (परन्तु बव्हेरिया प्रान्त में बहुत कम है)। उक्त शुल्क दो या तीन किश्तों में देना होता है। तथापि होशियार और निर्धन विद्यार्थियों के लिए स्कालरशिप, छात्रवृत्ति आदि की सहायता भरपूर होने के कारण यह बात नहीं होने पाती कि वह गिम्नासिउम् की शिक्षा से वञ्चित रह जाय। निचली श्रेणी से ऊपर की श्रेणी में चढ़ने के लिए परीक्षा होती है, परन्तु अधिकांश में ऊपर चढ़ना शिक्षक की हर महीने की मिली हुई सम्मति पर निर्भर रहता है। नवें वर्ष के अन्त में परीक्षा हो कर विद्यार्थी को सर्टिफिकेट मिल जाता है और वह उस को विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के लिए पर्याप्त होता है। विश्वविद्यालयप्रवेश के अतिरिक्त इससे विद्यार्थी को एक सब से बड़ा लाभ यह भी होता है कि यदि उसके पास गिम्नासिउम् की ७ वर्ष की शिक्षा का भी सर्टिफिकेट हुआ तो उसको सेना में दो वर्ष की अनिवार्य्य नौकरी के बजाय केवल एक वर्ष तक ही स्वेच्छा से नौकरी करनी होती है। इसको 'आइन येरिगफ्रायविलिग' (वनइयर व्हालण्टियर) कहते हैं।

इन उपर्युक्त कारणों से तथा वहां की जनता के इस खयाल से भी कि जो गिम्नासिउम् में शिक्षा प्राप्त कर लेता है वह एक सभ्य गृहस्थ (गेविलडेटर-जन्टलमेन) के सर्व लक्षणों से युक्त हो जाता है, भले आदमियों के लडके अधिकतर इन्हीं पाठशालाओं की ओर अधिक आकृष्ट होते हैं। यदि वास्तविक रीति से देखा जाय तो आज कल के जमाने में जब कि विज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है और रेआल शूलेन अर्थात् व्यहारोपयोगी पाठशालाओं की भी दिन दूनी रात चौगुनी बढती हो रही है, जर्मनी में माध्यमिक शिक्षा की पाठशालाओं में गिम्नासिउम् पाठशालाओं की सख्या सब से अधिक है। प्रशिया में इन स्कूलो की सख्या ३४१ और विद्यार्थियो की १०३७०२ तथा अध्यापको की ६५७१ हैं। उपर्युक्त सख्या में ३१ प्रो गिम्नासिउम् की सख्या भी सम्मिलित है। इनमें विद्यार्थियो की सख्या ४०४५ और अध्यापको की २६५ है। इन प्रो गिम्नासिउम् और गिम्नासिउम् पाठशालाओं में केवल इतना ही अन्तर है कि इनमें ऊपर की तीन श्रेणिया नहीं रहती हे। अतएव उसके विद्यार्थियो को 'रायफ त्साइजनिस्' अर्थात् शिक्षा पूर्ण होने का प्रमाण-पत्र और उस पर अवलम्बित विश्वविद्यालय प्रवेश नहीं मिल सकता। बाकी शिक्षा दोनो ही ओर समान रूप से दी जाती है। साक्सेन रियासत में १८ गिम्नासिउम् हैं और उनमें कोई २६½ लाख मार्क प्रति वर्ष व्यय होता है, जिसमें से १०½ लाख मार्क अर्थात् लगभग तीसरे हिस्से से ऊपर साक्सन रियासत देती है।

अब हम कुछ स्थानो की गिमूनासिउम् पाठशालाओं के समय विभाग पत्रक देते हैं। सन् १९११ में इन पत्रकों के अनुसार शिक्षा का समय निम्नलिखित नियत था —

लाइप्ज़िक 'टोमाम्' गिमूनासिउम् का समय-विभाग-पत्रक ।

श्रेणी	धर्म	जर्मन	लैटिन	ग्रीक	फ्रेंच	इतिहास	भूगोल	गणित	फिज़िक्स	केमिस्ट्री	स्वास्थ्य शिक्षा	कुल जोड़
१	३	४	९	०	०	२	१	३	०	०	२	२४
२	३	३	९	०	०	७	२	४	०	०	२	२५
३	२	३	८	०	५	२	२	१	०	०	२	२५
४	२	२	८	७	३	२	२	३	०	०	२	३१
५	२	२	८	७	२	२	२	४	०	०	२	३१
६	२	२	८	७	२	२	०	४	२	०	०	२९
७	२	३	७	७	२	३	०	४	२	०	०	३०
८	२	३	८	७	३	३	०	४	२	०	०	३१
९	२	३	८	७	२	३	०	४	२	०	०	३१
	२०	२५	७३	४२	१९	२१	९	३१	८	०	१०	

बर्लिन 'मोमसेन' गिम्नासिउम् का समय-विभाग-पत्रक ।

श्रेणी	धर्म	जर्मन	कथा	लैटिन	ग्रीक	फ्रेंच	इंग्लिश	इतिहास	भूगोल	गणित	गिनती	सृष्टिशास्त्र	लेखन	ड्राइंग	गायन	व्यायाम	कुल जोड़	
१	३	३	१	८	०	०	०	०	२	०	४	२	२	०	२	३	३०	
२	२	२	१	८	०	०	०	०	२	०	४	२	२	२	२	३	३०	
३	२	३	०	८	०	४	०	२	२	२	२	२	०	२	१	३	३३	
४	२	२	०	८	६	२	०	२	१	३	०	२	०	२	१	३	३४	
५	२	२	०	८	६	२	०	२	१	३	०	२	०	२	१	३	३४	
६	२	३	०	७	६	३	०	२	१	४	०	२	०	(२)	१	३	३४	(२)
७	२	३	०	७	६	३	(२)	३	०	४	०	२	०	(२)	१	३	३४	(४)
८	२	३	०	७	६	३	(२)	३	०	४	०	२	०	(२)	१	३	३४	(४)
९	२	३	०	७	६	३	(२)	३	०	४	०	२	०	(२)	१	३	३४	(४)
कु० जो०	१९	२४	२	६८	३६	२०	(६)	१७	९	२४	१०	१८	४	(८)	११	२७		

उपर्युक्त पत्रक में बतलाये हुए घण्टे एक सप्ताह के हैं ।

दूसरा अध्याय ।

रिअल्स्कूल्स् ।

अठारहवीं शताब्दि के मध्य युग में पुरानी भाषाओं को छोड़कर नवीन भाषाएँ और नूतन वैज्ञानिक शास्त्रों (रेआलिएन्) की शिक्षा देने की आवश्यकता भास होने लगी, और इस प्रकार की एक रेआलशूल (व्यवहारोपयोगी) पाठशाला सन् १७४७ ई० में बर्लिन नगर में स्थापन भी हो गई । इस पाठशाला को रेआल्शूल अर्थात् व्यवहारोपयोगी पाठशाला कहते हैं । शनै शनै इसी प्रकार की पाठशालाओं की स्थापना अन्य नगरों में भी होने लगी । परन्तु इस शताब्दि में इन पाठशालाओं की संख्या अधिक न बढ़ सकी, हां, इतना अवश्य हुआ कि इन पाठशालाओं ने एक नवीन दिशा की ओर लोगों का मन आकर्षित किया । उन्नीसवी शताब्दि में इनकी संख्या बड़े वेग से बढ़ने लगी । इन पाठशालाओं की उन्नति के मुख्य कारण संक्षेप में ये थे —फ्रांस में राज्यक्रान्ति होकर वहां की नागरिक प्रजा को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी थी और युद्ध के पश्चात् जो शान्तिमय समय प्राप्त हुआ, उसमें नगरों की आशातीत उन्नति होने लगी थी । इनके साथ ही साथ उद्योग-धन्धों की बढ़ती हुई थी, और उसके लिए 'रेआलियन' (व्यवहारोपयोगी शिक्षा) देने की आवश्यकता बढ़ने लगी थी । इसके सिवा हुम्बोल्ट प्रभृति महाशयों ने छोटे छोटे नगरों की कामचलाऊ लेटिन पाठशालाओं में और नूतन उद्देश्यों पर स्थापन हुई गिम्नासिउम् पाठशालाओं में सदा के लिए वियोग करा दिया था । इस

कारण से भी उपर्युक्त पाठशालाओं की अधिक उन्नति हुई। इन छोटी छोटी पाठशालाओं के अधिष्ठाताओं ने परिस्थिति की ओर ध्यान देकर प्राचीन भाषाओं की शिक्षा को बन्द कर नवीन भाषाओं को सम्मिलित कर लिया। फ्रेञ्च भाषा को दूसरी भाषा की जगह रखकर उसे आवश्यक कर दिया और रेआलिएन की शिक्षा का आदर करके उसे भरपूर समय दिया। इन छोटी पाठशालाओं में छः वर्ष तक का शिक्षाक्रम था, अर्थात् बालक की १० वर्ष की उम्र से १६ वर्ष की उम्र तक शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार से ये नूतन रेआलशूल पाठशालाएँ इधर-उधर चमकने लगीं। इनकी उन्नति देखकर अनेक मनुष्यों को विश्वास हो गया कि यह पाठशालाएँ भी 'सब ओर की शिक्षा' देने वाली हैं। अतएव सन् १८३२ में राज्य को भी इनका अस्तित्व स्वीकार करना पड़ा और इनके सम्बन्ध में नियम बनाये गये। सरकार ने इस बात को भी स्वीकार कर लिया कि ये पाठशालाएँ जर्मन भाषा, गणित, फ्रेञ्च, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि की परीक्षा लेकर प्रमाण-पत्र दे सकती हैं।

गिम्नासिउम् के विरुद्ध रेआलिएन।

उस समय शिक्षा विभाग का कार्य्य गिम्नासिउम् के अभिमानी पण्डितों के हाथ में था। अतएव वे इन नूतन पाठशालाओं से द्वेष करने लगे, परन्तु तो भी उनकी उपयुक्तता के कारण उनकी उन्नतिही होती गई। तब विद्या-विभाग के मन्त्री ने फैसला करने की बुद्धि से सन् १८५९ में इन रेआलशूलों के दो विभाग किये। एक ९ वर्ष की शिक्षा का, और दूसरा पहले के अनुसार ६ वर्ष का। ९ वर्ष के रेआल-

शुल में पुन लैटिन को आवश्यक करके उसको 'रेआल् गिम्नासिउम्' नाम दिया, और यह बात मान्य की गई कि इसमें भी गिम्नासिउम् के समान और उतनी ही शिक्षा दी जाती है, और विशेषता यह रक्खी गई कि उसके साथ ही साथ जर्मन, फ्रेञ्च, और इंग्लिश, भाषाओं और नये शास्त्रों की शिक्षा भी दी जाती है। इसके सिवाय अब तक जितने भी उच्च कोटि के उद्योग धन्धों की शिक्षा देनेवाले विद्यालय या महा विद्यालय (कालेज) खुल चुके थे, उन सब में प्रवेशार्थ केवल यही गिम्नासिउम् एक द्वार रक्खा गया। इसका कारण केवल यही था कि उन विश्व-विद्यालयों में तथा मन्त्रि मण्डल में अधिकतर गिम्नासिउम् के पक्षपाती पण्डित सम्मिलित थे। इसके बाद नूतन भाषा और शास्त्रों के पक्षपातियों ने ५० वर्षतक झगड़ २ कर रेआल गिम्नासिउम् को सब तरह से गिम्नासिउम् के बराबर योग्यता और अधिकारशाली संस्था बना दिया। अन्त को सन् १८७० में रेआल् गिम्नासिउम् के शिक्षाप्राप्त विद्यार्थियों के लिए विश्व विद्यालय प्रवेश की रुकावट दूर हो गई। किन्तु सर्वांश में नहीं, बल्कि केवल तत्त्वज्ञान में, और उसमें से भी गणित और आधुनिक विज्ञान में! धर्म, वैद्यक और कानून की शाखायें उनके लिए कुछ दिनों तक बन्दही रहीं। गिम्नासिउम् के अभिमानियों का कहना था कि जिन विद्यार्थियों ने लैटिन और ग्रीक भाषा का अध्ययन नहीं किया, उनको धर्म, वैद्यक और कानून की ओर झुककर देखना भी पाप है। उनके इस कथन में कुछ सत्यांश था, किन्तु कहावत है कि "जिसका पेट दुखता होगा, वह खुद अजवायन माग लेगा" इसी तरह से जिसको यह इच्छा होगी कि वह प्राचीन

भाषाओं के आधार पर स्थित, धर्म, वैद्यक और कानून का अभ्यास करे, वह स्वयं उन भाषाओं का ज्ञान किसी न किसी प्रकार उपलब्ध करेगा। अतएव सुधारकों का कथन था कि विश्व विद्यालयों को ऐसा कड़ा नियम नहीं बनाना चाहिए। उन्होंने इसके लिए प्रयत्न किया और उन्हें इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। सन् १६०१ में रेआल्-गिम्नासिउम् से शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी के लिए विश्व विद्यालय की सब शाखायें समान रूपसे खुल गईं।

हम ऊपर कह आये हैं कि रेआल् गिम्नासिउम् की शिक्षा ६ वर्ष की होती है। इसमें ग्रीक भाषा को ज़रा भी स्थान न दिया गया। लेटिन है अवश्य, परन्तु उसको भी निचली श्रेणियों में केवल छः घण्टे ही प्रति सप्ताह दिये जाते हैं। इनकी बजाय फ्रेञ्च और इंग्लिश भाषाएँ आवश्यक कर दी गईं। प्रति सप्ताह विषयानुसार इस प्रकार का समय नियत है,—धर्म २ घण्टे, जर्मन भाषा ४ से ३ घण्टे, लैटिन ६ से ३ घण्टे, फ्रेञ्च ४ घण्टे, अँग्रेजी २ घण्टे, इतिहास-भूगोल ३ घण्टे, अङ्क गणित, बीज गणित तथा भूमिति के लिए ४ से ५ घण्टे, आधुनिक शास्त्र या सृष्टि-विज्ञान ३ घण्टे और ड्राइंग २ घण्टे। इस प्रकार से सब मिलाकर बालक की उम्र के लिहाज से प्रति सप्ताह २६ से ३१ घण्टों तक शिक्षा दी जाती है।

ओबर रेआल्शूल।

ऊपर कहा गया है कि सन् १८५६ में विद्या-विभाग के मन्त्री ने प्राचीन और नवीन का मिश्रण कर रेआल-गिम्नासिउम् की सृष्टि की थी, परन्तु यह प्रबन्ध आधुनिक शिक्षा-

मिमांयिो तथा शिक्षा विषय में निपुण लोगों को पसन्द न आया। अतएव अब उन्होंने इस ओर प्रयत्न करना शुरू किया कि उनकी छ वर्ष शिक्षा देनेवाली रियाल्शूल के साथ एक दूसरी ऐसी पाठशाला खोली जावे जो सब प्रकार से गिम्नासिउम् के समान शिक्षा देनेवाली हो तथा उसकी योग्यता भी उसी प्रकार को समभी जाय। उनके कहने का सारांश यह था कि नूतन-विद्याएँ और आधुनिक शास्त्रों के द्वारा कमसे कम इतनी शिक्षा तो अवश्य ही मिल सकती है, जितनी कि गिम्नासिउम् में दी जाती है और इसी लिए ये लोग रेआल्-गिम्नासिउम् को एक प्रकार का स्वांग समझते थे। इस वादविवाद में दो पक्ष खड़े हो गये। एक तो गिम्नासिउम् के पुराने पण्डितो का और दूसरा शिल्पशास्त्री इञ्जीनियर आदिको का। इस समय विद्या विभाग के मन्त्री ने विवाद को शान्त करने के लिए छ श्रेणियोवाले रेआल्शूल में तीन श्रेणियाँ और जोडकर उसको ६ श्रेणियोवाला बना दिया, और इस प्रकार से गिम्नासिउम के जोड के "ओबर रेआल्शूल" की सृष्टि हुई। अब माध्यमिक शिक्षाकी दो जुदी २ पाठशालाएँ बन गईं। एक तो गिम्नासिउम्-जिसमें कि लैटिन और ग्रीक पर विशेष जोर था, और दूसरी ओबर रेआल्शूल-जिसमें कि प्राचीन भाषाओं को छोड़कर नवीन भाषाएँ और शास्त्रों का अभ्यास रक्खा गया था। प्रथम ही प्रथम ओबर रेआल्शूल के विद्यार्थियो को युनिव्हर्सिटी-प्रवेश और केवल एक वर्ष की सेना में खुशी की नौकरी आदि सुभीते नहीं दिये गये थे, परन्तु अन्त में झगडने २ सन् १६०१ में रिआल् गिम्नासिउम् के साथ ही इसको भी सब सुभीते मिल गये। परन्तु इसके विद्यार्थियों के लिए केवल धार्मिक (फैकल्टी आफ थिआलजी)

शाखा की ओर प्रवेश करने के लिए अब तक भी सख्त मुमानियत है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जिस प्रकार गिम्नासिउम् विश्व-विद्यालय-प्रवेश की प्रथम सीढ़ी है, उसी प्रकार से ओवर रेआल्शूल अनेक प्रकार के शिल्प-शिक्षा और उद्योग-धन्धे सिखलानेवाले विद्यालयों की प्रथम सीढ़ी समझा जाता है। वे विद्यालय ये हैं —'टेश्निश होख़शूल' (अँ०टेकनिकल), 'हॉडेल्स होख़शूल' (कमर्शियल कालेज) और 'टिअर पर्त्सलिश होख़शूलेन' (व्हेटरिनरी) इत्यादि।

पाठ्य प्रणाली।

इस ओवर रेआल्शूल में भी प्रति सप्ताह २६ से ३१-३२ घण्टों तक शिक्षा दी जाती है। इसके पाठ्य विषयों में प्राचीन भाषाओं को स्थान न देकर उनकी जगह फ्रेञ्च और इंगलिश भाषाएँ रक्खी गई हैं। गणित और विज्ञान को जियादा समय अर्थात् प्रति सप्ताह ५–६ और ४ घण्टे क्रमशः दिये जाते हैं, तथा शुद्धलेखन और ड्राइंग की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। श्रेणियों के न्यूनाधिक मान से प्रत्येक विषय के लिए समय का लेखा इस प्रकार है —धर्म २ घण्टे, जर्मन भाषा ४, फ्रेञ्च भाषा ८ से ६, अङ्गरेजी ३, इतिहास भूगोल ४ से ३, अंक गणित १, बीज गणित और भूमिति ४ से ५, आधुनिक शास्त्र ४ से ६, ड्राइङ्ग २, और शुद्ध लेखन १ घण्टा। विज्ञान की शिक्षा प्रत्यक्ष प्रयोगों-द्वारा दी जाती है और कुछ नियमित प्रयोग विद्यार्थी के हाथ से करवा लिये जाते हैं। ओवर रेआल्शूल का यह एक नियम ही है कि हरएक पाठशाला में कम से कम रसायन-शास्त्र-सम्बन्धी और यन्त्र-शास्त्र-सम्बन्धी हरएक किस्म के छः छः यन्त्र रहें। पहलेपहल सबसे निचली

श्रेणियों में प्राणि-शास्त्र तथा वनस्पति-शास्त्र के मूल तत्व, इसके बाद उच्च श्रेणियों में यन्त्र-शास्त्र और रसायन शास्त्र, की वैज्ञानिक पाठ्य प्रणाली है। हमारे देश में सन् १९११ तक यन्त्रशास्त्र का जितना ज्ञान 'इंटरमिजियट' में कराया जाता था, उतना ज्ञान जर्मनी में पाठशाला ही में करा दिया जाता है। यही हाल रसायन शास्त्र का है। उदाहरण के लिए नवम् श्रेणी अर्थात् ऊपर की श्रेणियों में 'प्रकाश और विद्युत्' सम्बन्धी प्रयोग और आरगेनिक केमिस्ट्री सिखलाई जाती हैं। अतएव रेआल्शूल का शुल्क गिम्नासिउम् से दुगुना—लगभग १५० रुपये वार्षिक देना पड़ता है। फ्रेञ्च और अंग्रेजी सिखाने के लिए हरएक स्थान में उस उस देश के शिक्षक रहते हैं, अथवा जर्मनी के शिक्षक एक दो वर्ष तक फ्रांस और इङ्गलेण्ड में जाकर इन भाषाओं का ज्ञान उपलब्ध कर आते है। सन् १९११ में पाठशालाओं के पाठ्य विषय और समय आगे दिया जाता है।

'म्यूनिच' रेआल्-गिम्नासिउम् का समय-विभाग पत्रक।

श्रेणी	धर्म शिक्षा	जर्मन	लेटिन	फ्रेंच	इंग्लिश	गिन्ती	गणित	वनस्पतिशास्त्र	प्राणीशास्त्र	यन्त्रशास्त्र	रसायनशास्त्र	इतिहास	भूगोल	ड्राइंग	व्यायाम	सर्वयोग
१	२	२	७	४	०	३	०	२	०	०	०	२	२	३	२	२९
२	२	२	७	४	०	०	४	०	२	०	०	२	२	३	२	३०
३	२	२	६	३	४	०	६	०	०	०	०	२	०	४	२	३१
४	२	२	६	३	३	०	६	०	०	२	०	३	०	४	२	३३
५	२	३	५	३	३	०	*५	०	०	२	२	३	०	३	२	३३†
६	२	४	५	३	३	०	†५	०	०	२	३	२	०	२	२	३३
	१२	१५	३६	२०	१३	३	२६	२	२	६	५	१४	४	१९	१८	

* त्रिग्नामेट्री। † ग्रैफिकल जि० ज्या०।

'म्यूनिच' ओबर रेआलशूल का समय-विभाग पत्रक।

श्रेणी	धर्म शिक्षा	जर्मन	फ्रेंच	इंग्लिश	गिनती	गणित	भूगोल	इतिहास	प्रकृतिशास्त्र	फ़िज़िक्स	रसायन	ड्राइंग	लेखन	व्यायाम	सर्वयोग
१	२	५	६	०	४	०	२	०	२	०	०	३	२	२	२८
२	२	५	६	०	४	०	२	०	२	०	०	४	१	२	२८
३	[illegible]	४	५	०	३	२	२	२	२	०	०	४	०	२	२८
४	२	४	३	०	१	४	२	२	२	३	०	४	०	२	२६
५	२	३	३	५	०	५	१	२	१	३	२	२	०	२	३१
६	२	३	३	५	०	५	१	२	१	३	२	२	०	२	३१
७	२	३	४	५	०	५	१	२	१	३	३	२	०	२	३१
८	२	३	४	३	०	५	१	२	१	३	३	२	०	२	३१
९	२	३	३	३	०	५	०	३	१	३	३	२	०	२	३१
	१८	३३	३७	१६	१२	३१	१२	१५	१३	१८	१३	२५	३	१८	

पाठशाला और विद्यार्थियों की संख्या।

प्रशिया में ओवर-रेआल्शूलों की संख्या कोई ९९ है और उनमें ४०६४४ विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। परन्तु छः श्रेणियोंवाले रेआल्शूलों की संख्या १७१ है, और उनमें ३२२४९ विद्यार्थी पढ़ते हैं। इसके विद्यार्थी जब छः वर्ष का अभ्यास-क्रम समाप्त कर चुकते हैं तब अपनी २ इच्छानुसार तीन वर्ष तक भिन्न २ उद्योग-धन्धोंवाली पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्तकर व्यापार में या दूकानदारी पेशों में प्रवेश करते हैं। अर्थात् इन छोटे २ उद्योग-धन्धोंवालों के लिए ये छः वर्ष की पाठशालाएँ ही उपयुक्त होती हैं। प्रशिया में रेआल्-गिम्नासिउम् की संख्या १९२ है और उनमें ४८१६० विद्यार्थी पढ़ते हैं। इसी प्रकार की, परन्तु छः श्रेणियोंवाली रेआल्प्रो-गिम्नासिउम् की संख्या ८१ है और उनमें ३६०३ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। प्रशिया में गिम्नासिउम् की संख्या ३४१ है और उनमें कोई १०६७०२ विद्यार्थी पढ़ते हैं। यद्यपि हम रेआल्-गिम्नासिउम् पाठशालाओं का वर्ताव द्विधाजनक ख्याल करके उन्हें एक ओर कर दें, तो भी गिम्नासिउम् और रेआल्गिम्नासिउम् की और उनके विद्यार्थियों की संख्या प्रशिया में निम्नलिखित है —

गिमना०	प्रो-गिम्-नासि०	ओवर-रेआ-लशूल	रेआल्-शूल	कुल गिमना०	कुल रेआल०
पाठ० ३४१ +	३१	९९ +	१७१	३७२	२७०
वि० १०३७०२ +	४१५	८०६४२ +	३२२४८	१०७११७	११२८९०

इसपर से पाठकगण अनुमान कर सकगे कि जर्मनी में अभीतक गिम्नासिउम् का कितना अधिक मान है। रात-दिन व्याकरण की घोकपट्टी, और उठते-बैठते लैटिन और ग्रीक के पीछे लगा हुआ लडका, इस प्रकार का गिम्नासिउम् का अभ्यासक्रम होनेके कारण शारीरिक व्यायाम और खेल कूद की ओर बहुत कम ध्यान रखता है। यद्यपि ऐसी हालत है, तो भी वहाकी जनता का यह खयाल है कि गिम्नासिउम् की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर मनुष्य में सभ्यता के सब लक्षण अनायास आ जाते हैं—वह मनुष्य सभ्य गृहस्थ (जेंटलमेन) कहलाता है। अतएव सभ्यता का सर्टिफिकेट प्राप्त करने के लिए अधिक लोग गिम्नासिउम् की ओर ही आकर्षित होते हैं तो इस में आश्चर्य ही क्या है। हा अन्य रियासतो में यह परिस्थिति बदलती जारही है। बव्हेरिया में जहा गिमनासिउम् की सख्या ४५ है, रेआलशूल की ५६ है, परन्तु यदि इनमें ३२ प्रो-गिम्नासिउम् की भी सख्या जोडी जाय तो परिणाम वही निकलेगा जो कि प्रशिया की सख्या में लगाया गया था। सेक्सनी में गिम्नासिउम् १६ और रेआल्शूलेन १३ है। ओवर-रेआलशूल ५ और रेआलशूल ४ हैं।

सन् १९१० में प्रशिया में माध्यमिक शिक्षा देनेवाली भिन्न भिन्न प्रकार की जो ७१४ पाठशालाएँ थीं उनका व्यय कोई ८ करोड ६० लाख मार्क हुआ था, जिससे सरकार की ओर से नियमित और यकनफयकन जो रकमें दी गई, वह १ करोड ६४ लाख मार्क की थी। इसके अतिरिक्त राज्य की सहायता से चलने वाली २४७ पाठशालाएँ थीं, उनमें २ करोड ७३ लाख मार्कस् व्यय हुआ, इसमें से सरकार को

कोई १ करोड ५० लाख मार्कस् खर्च करना पड़ा। अर्थात् केवल माध्यमिक-शिक्षा पर ही सरकार को ३ करोड ४ लाख मार्कस् (२ करोड ५८ लाख रुपये) खर्च करने पड़े थे।

विशिष्टीकरण।

जर्मनी की माध्यमिक-शिक्षा का वर्णन समाप्त करने के पहले हमें एक बात का उल्लेख कर देना परमावश्यक है। वह यह है कि जर्मनी में शिक्षा के विषय में बड़ी ही बुद्धिमत्ता के साथ विशिष्टीकरण (Specialization) हुआ है। जर्मनी में आप ऐसी कोई भी कला, उद्योग अथवा विद्या न पायेंगे, जिसका कि कोई स्वतन्त्र विद्यालय या अभ्यास-क्रम न हो। इतना ही नहीं, परन्तु एक ही धन्धे के भिन्न २ कार्यों के लिए भिन्न २ प्रकार के विद्यालय खुले हुए हैं। इनको 'फाखशूलेन्' अर्थात् शाखा-पाठशालाएँ कहते हैं। उदाहरणार्थ, रेलवे की नौकरी के लिए फायरमैन (कोयला भरनेवाला), फिटर, ड्रायव्हर, अञ्जन साफ करनेवाला, बिगड़े हुए यन्त्र को मरम्मत करनेवाला इत्यादि हरएक प्रकार के काम करने वाले मनुष्य उन उन विषयों की पाठशालाओं में शिक्षा प्राप्त किये होते हैं, और इसी लिए जर्मनी में अपने अपने काम में पूर्ण होशियार और बारीक बातों को भी समझ लेनेवाले जितने मनुष्य मिलते हैं, उतने अन्य देशों में नहीं। अतएव जर्मनी में अनेक व्यवसाय करनेवाले मनुष्य कदापि भी न मिल सकेंगे, और यदि ऐसे मनुष्य होंगे भी, तो उनको कहीं भी ठिकाना मिलना मुश्किल है। प्रत्येक बालक की शिक्षा और उसका भावी जीवन किस प्रकार का होगा, यह नियमित समय पर ही निश्चित हो जाता है।

हो, यह बात सत्य है कि कोई भी बात निर्दोष नही हो सकती, और इसी न्यायानुसार उपर्युक्त पद्धति में भी दोष निकाल सकते हैं। उदाहरणार्थ, किसी विद्यार्थी को बहुत समय के बाद यह मालूम हुआ कि अमुक कला या धन्धे में निपुण होने के लिए वह सर्वथा असमर्थ है, तो बाद में उसकी वही हालत होगी कि 'साप छछून्दर गति भई, उगलत बनत न खात' इस प्रकार की स्थिति होनेपर उसका जीवन कष्ट साध्य हो जायेगा। हम इस विशिष्टीकरण का एक उदाहरण देते हैं, जिस पर से पाठको को इसकी स्पष्ट कल्पना हो जायगी। लाइप् झिक नगर में एक युनिव्हर्सिटी और प्रथम वर्णन की हुई तीन प्रकार की पाठशालाओं के अतिरिक्त एक व्यापारिक विद्यालय, एक सङ्गीत विद्यालय, सुनारी, बुक बाइंडिङ्ग और प्रिंटिंग आदि विषयो की शिक्षा देनेवाली पाठशालाएँ, लेखको के लिए अनेक पाठशालाएँ, व्यापारिक पाठशाला, भोजन पाठशाला, यन्त्र-पाठशाला, इस प्रकार से अनेक धन्धों के लिए अनेक प्रकार की पाठशालाएँ बनी हुई हैं।

नूतन धारणा।

अब अन्त में हम यह देखना चाहते हैं कि गिमना सिउम् और रेआलशूलेन् के विषय में आधुनिक शिक्षा विशारदो का क्या ख़याल है। हमने इस बात को ऊपर बतला दिया है कि उन्नीसवीं शताब्दि के अन्ततक इस विषय में निपुण लोगो की उपर्युक्त पद्धति में क्या सम्मति थी। किन्तु वर्तमान समय में यह सम्मति सर्वथा बदलती जा रही है। लैटिन और ग्रीक का पूर्वपरम्परा से अभ्यास करनेवाले पण्डित भी अब इस बात को स्पष्टतया स्वीकार

करने लगे हैं कि प्राचीन भाषाओं के अध्ययन से मन पर जितना संस्कार होता है, उतना ही संस्कार गोटे, शिलर, लेसिंग्, हुम्बोल्ट, कान्ट, फिश्टे आदि विद्वानों के बनाये हुए ग्रन्थाध्ययन से भी हो सकता है। यह विचार नूतन होने के कारण उन्नीसवीं शताब्दि में वह अनुभव की कसौटी पर परीक्षा करने की हालत में था, और अन्य नूतन विचारों के समान इसके मार्ग में भी अनेक बाधायें उपस्थित हुईं, परन्तु अब यह विचार अनुभव की भट्टी में तप गया है और वह कुन्दन के समान दमकने लगा है। अतएव यह सर्वथा निश्चित है कि दिनों-दिन आधुनिक भाषाओं और शास्त्रों का प्रचार बढ़ता जायगा। दिनो-दिन गिम्नासिउम् की आवश्यकता कम होकर नई नीवपर नई पाठशालाओं की संख्या बढती जायगी। इसका कारण स्पष्टतया प्रकट है। यद्यपि धर्म, प्राचीन तत्वज्ञान, कानून (ये विषय अधिकांश में लैटिन और ग्रीक पर अवलम्बित हैं) इत्यादि के अभ्यास करनेवाले विद्यार्थियो की संख्या क्रमशः न्यून न भी हुई, तो भी यह निश्चित है कि वह बढ नहीं सकती। इसके विरुद्ध में कला कौशल सीखनेवाले, इञ्जीनियर, आधुनिक वैज्ञानिक, वैद्य और नये साहित्य का अभ्यास करनेवाले विद्यार्थियो की संख्या बढती जायगी। कारण केवल यही है कि वर्तमान वैज्ञानिक-युग में इन विषयो की अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव यह स्पष्ट है कि अब नूतन विषयो की पाठशालायें ही अधिक बढेंगी, और जैसे जैसे इनकी संख्या बढती जायगी, वैसे वैसे प्राचीन ग्रीक और लैटिन पाठशालाओं की संख्या कम होती जायगी, और अन्त में धर्मा-

चार्य, तत्त्वज्ञानी और क़ानूनी पण्डितों की आवश्यकतानुसार ही इनकी संख्या रह जायगी। यह बात तत्काल ही, या चुटकी बजाते ही न हो सकेगी। ऐसा होने के लिए अभी कुछ समय की आवश्यकता है। परन्तु इस विषय के विद्वान् और अनुभवी लोगों की धारणा है कि यह बात अवश्य ही होनी चाहिए।

तृतीय भाग।

पहला अध्याय।

स्त्री-शिक्षा।

अखिल मानव जाति के और विशेषकर विद्यानुराग राष्ट्रों के सम्मुख शिक्षा का प्रश्न इतने महत्व का है कि इसके समान अन्य प्रश्न कोई भी न होगा। सुधरे हुए यूरोपियन राष्ट्रों में लगभग दो ढाई सौ वर्ष हुए, जब यह विचार उत्पन्न हुआ कि मनुष्यों की नैतिक और बौद्धिक उन्नति का शिक्षा एक जीवन है। इसी विचारानुसार उन्होंने प्रयत्न शुरू कर दिये, और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने इस प्रश्न को बड़ी सन्तोषदायक रीति से हल कर लिया किन्तु पहलेपहल उन्होंने केवल आधी मनुष्य-जाति का ही विचार किया था। जिस समय वहां शिक्षा विषय पर विशेषकर माध्यमिक शिक्षा पर बड़ा तीव्र मत-भेद उपस्थित हुआ था तथा प्रत्येक पक्ष परस्पर एक दूसरे को अनुभव विचारों का प्रतिपादन करनेवाला बता रहा था, उस समय यह किसी को भी न सूझा कि स्त्रियों को पढ़ने लिखने तथा गायन के अतिरिक्त अन्य शिक्षा की भी आवश्यकता है या नहीं। क्योंकि यूरोप में अभी २ यह विचार मान्य हुआ है कि स्त्री भी पुरुषों के समान स्वतन्त्र है, तब फिर उसको स्वाभाविक और स्वयसिद्ध विकास की शिक्षा देना तो दूर ही रहा। रूसो के समान तत्त्ववेत्ता, जिसका यह सर्वमान्य

सिद्धान्त था कि 'नैसर्गिक शक्तियों के विकास का ही नाम शिक्षा है', ने भी अपनी शिक्षा विषयक औपन्यासिक पुस्तक में यह लिख दिया है कि स्त्रियां केवल पुरुषों के सुख के लिए हैं। अन्य देशों में उसके जितने अनुयायी हैं, उनका भी यही कहना है कि स्त्रियों को जो शिक्षा दी जाय वह इस दृष्टि से दी जाय कि वे पुरुषों का और अपना मनोरञ्जन करने में समर्थ हो सकें। उनमें ऐसे गुणों का विकास हो जिससे, उसे और उसके पति को सुख मिले। शारीरिक शक्ति की अपेक्षा उनका शारीरिक सौन्दर्य्य ही अधिक बढ़ना चाहिए। सारी अठारहवीं शताब्दि भर तथा उन्नीसवीं शताब्दि के प्रारम्भ तक इसी कल्पना का प्राबल्य रहा, और इसीके अनुसार स्त्रियों को पढ़ना लिखना, फ्रेञ्च भाषा, गायन, नर्तन, कसीदे का काम और ऊँचे दरजे के समाज में चतुराई का बर्ताव, आदि विषयों की शिक्षा दी जाती रही। कदाचित् कोई एकाध महात्मा किसी समय इस मत के विरुद्ध आवाज उठाने को उत्पन्न हो जाता था, तो वह इस विशाल जन समुदायरूपी मृत तुल्य मेघोदक के तुषार-बिन्दु के समान न मालूम किधर विलीन हो जाता था। उन्नीसवीं शताब्दि के प्रथम चरण में सुप्रसिद्ध विद्वान् शिक्षण विषय पटु पेष्टालोजी ने इस शिक्षा के विरुद्ध अपनी लेखनी उठाई। तब तक समस्त यूरोप में स्त्री शिक्षा की ऐसी शोचनीय स्थिति थी। अठारहवीं शताब्दि के प्रथम भाग में जर्मन तत्ववेत्ता फ्रॉक ने एक पाठशाला लड़कियों को माध्यमिक शिक्षा देने के लिए खोली थी, परन्तु वह केवल पांच ही वर्ष तक चल सकी। इसका कारण केवल यही था कि उस समय स्त्री शिक्षा के लिए लोगों के विचार अति क्षुद्र थे।

कहा जाता है कि इतिहास की भी पुनरावृत्ति हुआ करती है। यदि हम भारतवर्ष के शिक्षा विषयक विकट प्रश्न पर दृष्टि डालें तो इस बात की सत्यता तत्काल मालूम हो जाती है। स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में हमारे देश के साढ़े इकतीस करोड़ की विशाल जन संख्या में कुछ मुट्ठी भर सुशिक्षितों की दृष्टि भी इसके आगे नहीं बढ़ सकी है कि स्त्रियों को केवल लिखना-पढ़ना सिखा दिया जाय।

किन्तु यूरोप की उपर्युक्त स्थिति में शीघ्रही क्रान्ति हो गई। वहां के विद्वान् लोग प्रतिपादन करने लगे कि स्त्री शिक्षा की यह कल्पना अति क्षुद्र है। इस बात की सत्यता वहां के विचारवान् लोगों ने स्वीकार कर ली। इसके सिवा उस समय अनिवार्य और मुफ्त शिक्षा का प्रचार सर्वत्र हो गया था, और शिक्षा पद्धति के विषय में बहुत सा ऊहा पोह होने लगा। उस समय वहां के जानकार और विद्वान् लोग बड़े ज़ोर शोर से प्रतिपादन करने लगे कि स्त्रियों को मानसिक, शारीरिक और नैतिक विकास की शिक्षा अवश्य ही देनी चाहिए, और इसके लिए उत्तम जनों द्वारा गृह पर भी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। अनेक राष्ट्रों को पादाक्रान्त करनेवाले नेपोलियन से एक बार एक मनुष्य ने प्रश्न किया था कि राष्ट्र की उन्नति के लिए सब से उत्तम उपाय कौन सा है? तब नेपोलियन ने उसे केवल यही उत्तर दिया था कि इसके लिए सुमाताओं का तैयार करना चाहिए। नेपोलियन के इस उत्तर में उन विचारों का तमाम सार भरा हुआ था जो उस समय के विद्वान् मस्तिष्कों में आन्दोलन कर रहे थे। अतएव पेस्टालोज़ी ने

अपने ग्रन्थ में यही प्रतिपादन किया कि यदि सुमताएँ तैयार करना है, तो स्त्री शिक्षा विषयक संकुचित विचारों को त्यागना ही श्रेयस्कर है और इसी मत का प्रचार पेस्टालोजी के शिष्यों ने सारी जर्मनी में किया।

शिक्षा मे सुधार।

इसके पश्चात् जर्मनी में स्त्री-शिक्षा के अभ्युदय का प्रारम्भ हुआ। स्त्रियों के लिए 'होअर मेडशेन शूल (कन्याओं के लिए माध्यमिक पाठशालाओं) की स्थापना हुई और उनमें साधारण और बड़े घरों की लड़कियों को उनकी उम्र के छठे वर्ष से सोलहवें वर्ष तक शिक्षा दी जाने लगी, अर्थात् १० वर्ष का शिक्षा क्रम नियत किया गया। पहले संगीत और कसीदे के काम में ही सब समय व्यतीत हो जाता था, परन्तु अब उक्त विषयों को प्रति सप्ताह नियमित घण्टे मिले, और जर्मन भाषा को अधिक समय दिया जाने लगा। पाठ्य विषयों में अंगरेजी भाषा का समावेश भी किया गया और इतिहास को भी सम्मिलित करके उसको विशेष महत्व दिया जाने लगा। सन् १८२० तक जर्मनी में इस प्रकार की पाठशालाएं ७० तक स्थापित हुई थीं, परन्तु इसके बाद २० वर्षों में और भी ३८ पाठशालाएँ स्थापित हो गईं, और सन् १८६० तक इनकी संख्या १०३ तक पहुंच गई।

इस समय तक सरकार ने इन पाठशालाओं की स्थापना में, या उनकी अन्तर्व्यवस्था में किसी भी प्रकार से सम्बन्ध न रक्खा, और न उनकी किसी प्रकार से रत्तीभर भी सहायता की। व्यक्तिगत प्रयत्न तथा सहशक्ति के बल पर ही सब काम उत्साहपूर्वक चल रहा था। इस प्रकार के व्यक्तिगत

प्रयत्नों में, व्यक्तिगत पाठशालाओं में उनकी पाठ्य प्रणाली में तथा उनके प्रबन्ध में समानता रहने के उद्देश से सन् १८७२ में कन्या-पाठशालाओं के कार्य्यकर्त्ताओं की एक विराट् सभा हुई थी, और उसमें सब बातों पर ऊहापोह होकर पाठशालाओं को एक निश्चित रूप दिया गया।

जिन कन्या-पाठशालाओं में ७ या इससे अधिक श्रेणियां थीं, और जिनमें दो विदेशी भाषाएँ अनिवार्य्य थीं, वे सब 'हाअर मेडशेन् शूल' में सम्मिलित कर लिये गये। भिन्न भिन्न प्रकार की प्रबन्धकर्त्री तथा कार्य्य कर्त्री समितियों का सङ्गठन हुआ, और १० वर्ष का पाठय समय, प्रबन्ध की विधिया तथा इन पाठशालाओं के शिक्षकों की योग्यता बालकों की पाठशाला के शिक्षकों के बराबर समझी जावे, इत्यादि अनेक बातें निश्चित रूप से तै हो गईं। इसके सिवा यह सिफारिश की गई कि पाठशालाओं की स्थापना का कार्य्य सरकार को करना चाहिए। इस सिफारिश पर पहले-पहल बाडेन और सक्सनी आदि छोटे २ राज्यों ने ध्यान दिया, और अन्त में सन १८८४ में प्रशिया-सरकार ने एक आज्ञा-पत्र निकाल कर इन पाठशालाओं का अस्तित्व, महत्त्व और प्रबन्ध को स्वीकृत किया तथा सामान्यतया देखरेख रखकर कुछ कुछ सहायता देने का भी बचन दिया। इस प्रकार से इन पाठशालाओं की स्थापना होकर उनकी भले प्रकार उन्नति होने, तथा उनको निश्चित स्वरूप पाकर सर्वमान्य होने, में लगभग सौ वर्ष लग गये। अब हम यह दिखना चाहते हैं कि उसका वर्तमान स्वरूप क्या है।

अध्यापिका-विद्यालय ।

अध्यापिकाएँ तैयार करने के लिए उपर्युक्त पाठशालाओं के साथ ही 'सेमिनार' स्थापित की गई । इस विद्यालय की पढ़ाई पहले तो ३ वर्ष की थी, परन्तु अब ४ वर्ष की कर दी गई है । इस विद्यालय में इतिहास, गणित, भाषा बालमानस-शास्त्र (सायकालोजी आफ च़ाइल्ड), और शिक्षा शास्त्र (पेडागोजी) इत्यादि विषय पाठ्य क्रम में सम्मिलित हैं । जो अध्यापिकाएँ इन सेमिनार में पढ़कर तैयार होती हैं, उनके लिए 'ओबर लेररिन' तक वेतनवृद्धि का मार्ग खुला हुआ है तथापि बहुत करके यह जगह विश्वविद्यालय की शिक्षाप्राप्त महिलाओं को ही दी जाती है ।

विश्व-विद्यालय की सीढ़ी ।

जिन 'होअर मेडशेन शूल' में इस प्रकार की सेमिनार नहीं होती है उनके साथ में विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाली विद्यार्थिनियों के लिए अलग श्रेणियाँ स्थापित हैं, जिनको वहां की भाषा में 'स्टूडियन् आन्स्टाल्ट्' कहते हैं । इस भिन्न प्रबन्ध का कारण यह है कि मेड्शेनशूल विश्वविद्यालय की सीढ़ी नहीं समझी जाती है, बल्कि वह तो एक स्वयं सिद्ध शिक्षा देनेवाली संस्था समझी गई है । कन्याओं को साधारणतया सुसंस्कृत कर देना इस संस्था का उद्देश है और इसी लिए उक्त उद्देशानुसार ही इसका पाठ्य क्रम रक्खा गया है । इसके पाठ्य विषयों में लेटिन और ग्रीक को बिलकुल स्थान नहीं दिया गया है, और जिम्नासिउम् की तरह केवल पूर्वपरम्परा पर

ध्यान न देकर निरूपयोगी विषय भी छोड़ दिये गये हैं। इस विद्यालय की १० वर्ष की पढ़ाई समाप्त कर कन्या ने जहां अन्तिम परीक्षा दी, कि फिर उसको पूर्णत्व का प्रमाण पत्र (रायफ त्साइज्निस) मिल जाता है। जिन विद्यार्थिनियों की इच्छा विश्वविद्यालय में प्रवेश करने की होती है, उनको उपर्युक्त स्टूडियन् आन्स्टाल्ट में ३ वर्ष तक और अधिक पढ़ना पड़ता है, इसके सिवा इनके प्रथम के दो वर्ष के पाठ्य-क्रम में भी कुछ परिवर्तन किया जाता है।,

---

दूसरा अध्याय।

तीन सीढ़ियां।

इस दस वर्ष की सामान्य शिक्षा देनेवाली पाठशाला की तीन सीढ़ियां अर्थात् विभाग किये जा सकते हैं। सब से निचली तीन श्रेणियों को प्रथम सीढ़ी कहते हैं, अर्थात् कन्या की उम्र के छठे वर्ष से नवें वर्ष तक, और उससे ऊपरवाली तीन श्रेणियों को बिचली सीढ़ी तथा सब से ऊपर की चार श्रेणियों को ऊपरवाली सीढ़ी कहते हैं। प्रथम सीढ़ी में प्राथमिक शिक्षा के ढङ्ग पर पढ़ाई होती है। बिचली सीढ़ी में इतिहास, सृष्टि-ज्ञान आदि विषय आरम्भ होते हैं, और विदेशी भाषाएं अर्थात् फ्रेञ्च और इंग्लिश भाषाएं ऊपरवाली सीढ़ी में दो वर्ष के पश्चात् आरम्भ होती हैं। उद्देश की ओर ध्यान देकर जर्मन भाषा, धर्म और इतिहास पर जियादा जोर दिया जाता है। यदि यह कहा जाय कि जर्मन भाषा सब

शिक्षा का केन्द्र है तो कोई अत्युक्ति न होगी। ऊपर की और बिचली सीढी में उच्च शिक्षा दी जाती है। धर्म शिक्षा का चरित्र पर उत्तम परिणाम होता है, इसलिए इस विषय की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है, और बहुत करके प्रातःकाल का समय इसी विषय के लिए नियत है। तीसरे वर्ष से भूगोल, चौथे से सृष्टि ज्ञान, और पाँचवें से इतिहास की पढ़ाई आरम्भ होती है। तीसरे वर्ष में हस्त-कौशल का काम और पाँचवें से अक्षरों की जगह पर ड्राइङ्ग की शिक्षा प्रारम्भ होती है। शारीरिक व्यायाम और गायन प्रथम तो साथ २ शुरू होते हैं और पश्चात् भिन्न २ हो जाते हैं। चौथे वर्ष से फ्रेञ्च भाषा शुरू हो जाती है, और इंग्लिश सब से ऊपरवाली सीढी में प्रारम्भ होती है। अङ्गरेजी को जर्मन भाषा के बराबर घण्टे दिये जाते हैं।

अध्ययन-क्रम।

होअर मेडशेनशूल पाठशाला में अध्ययन की रचना इतनी उत्तम रीति से की गई है कि जिससे बालिकाओं का सब ओर से विकास हो। लगभग तीन आधुनिक भाषाएँ, नूतन-शास्त्र, गायन और इतिहास की समयानुसार शिक्षा द्वारा ग्रहणशक्ति, धारणशक्ति, नैतिकशक्ति, बुद्धि तथा अभिरुचि का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है। पहले यह नियम था कि अमुक समय में अमुक विषय का इतना भाग पढ़ाना ही चाहिए, परन्तु अब इस मजबूरी के नियम को निकालकर इस ओर अधिक ध्यान दिया जाता है कि विद्यार्थिनी के मन पर विषय का उत्तम संस्कार हो और उसे उस विषय का अच्छा ज्ञान हो जाय।

ध्यान न देकर निरुपयोगी विषय भी छोड़ दिये गये हैं। इस-विद्यालय की १० वर्ष की पढ़ाई समाप्त कर कन्या ने जहां अन्तिम परीक्षा दी, कि फिर उसको पूर्णत्व का प्रमाण पत्र (रायफ रमाइजूनिस) मिल जाता है। जिन विद्यार्थिनियों की इच्छा विश्वविद्यालय में प्रवेश करने की होती है, उनको उपर्युक्त स्टूडिएन् आनुस्टाल्ट में ३ वर्ष तक और अधिक पढ़ना पड़ता है, इसके सिवा इनके प्रथम के दो वर्ष के पाठ्य-क्रम में भी कुछ परिवर्तन किया जाता है।,

---

दूसरा अध्याय।

तीन सीढ़ियां।

इस दस वर्ष की सामान्य शिक्षा देनेवाली पाठशाला की तीन सीढ़ियां अर्थात् विभाग किये जा सकते हैं। सब से निचली तीन श्रेणियों को प्रथम सीढ़ी कहते हैं, अर्थात् कन्या की उम्र के छठे वर्ष से नवें वर्ष तक, और उससे ऊपरवाली तीन श्रेणियों को बिचली सीढ़ी तथा सब से ऊपर की चार श्रेणियों को ऊपरवाली सीढ़ी कहते हैं। प्रथम सीढ़ी में प्राथमिक शिक्षा के ढङ्ग पर पढ़ाई होती है। बिचली सीढ़ी में इतिहास, सृष्टि-ज्ञान आदि विषय आरम्भ होते हैं, और विदेशी भाषाएँ अर्थात् फ्रेञ्च और इङ्गलिश भाषाएं ऊपरवाली सीढ़ी में दो वर्ष के पश्चात् आरम्भ होती हैं। उद्देश की ओर ध्यान देकर जर्मन भाषा, धर्म और इतिहास पर जियादा जोर दिया जाता है। यदि यह कहा जाय कि जर्मन भाषा सब

शिक्षा का केन्द्र है तो कोई अत्युक्ति न होगी। ऊपर की और निचली सीढी में उच्च शिक्षा दी जाती है। धर्म शिक्षा का चरित्र पर उत्तम परिणाम होता है, इसलिए इस विषय की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है, और बहुत करके प्रातःकाल का समय इसी विषय के लिए नियत है। तीसरे वर्ष से भूगोल चौथे से सृष्टि ज्ञान, और पाँचवें से इतिहास की पढ़ाई आरम्भ होती है। तीसरे वर्ष से हस्त-कौशल का काम और पाँचवें से अक्षरों की जगह पर ड्राइङ्ग की शिक्षा प्रारम्भ होती है। शारीरिक व्यायाम और गायन प्रथम तो साथ २ शुरू होते हैं और पश्चात् भिन्न २ हो जाते हैं। चौथे वर्ष से फ्रेञ्च भाषा शुरू हो जाती है, और इंगलिश सब से ऊपरवाली सीढी में प्रारम्भ होती है। अङ्गरेजी को जर्मन भाषा के बराबर घण्टे दिये जाते हैं।

अध्ययन-क्रम।

होअर मेड्शेनशूल पाठशाला में अध्ययन की रचना इतनी उत्तम रीति से की गई है कि जिससे बालिकाओं का सब ओर से विकास हो। लगभग तीन आधुनिक भाषाएँ, नूतन-शास्त्र, गायन और इतिहास की समयानुसार शिक्षा द्वारा ग्रहणशक्ति, धारणशक्ति, नैतिकशक्ति, बुद्धि तथा अभिरुचि का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है। पहले यह नियम था कि अमुक समय में अमुक विषय का इतना भाग पढ़ाना ही चाहिए, परन्तु अब इस मजबूरी के नियम को निकालकर इस ओर अधिक ध्यान दिया जाता है कि विद्यार्थिनी के मन पर विषय का उत्तम संस्कार हो और उसे उस विषय का अच्छा ज्ञान हो जाय।

पहले धर्म, इतिहास और जर्मन भाषा सिखाने की जो रीतियां थीं, वे भी बदल दी गई हैं। बायबल पर अन्ध श्रद्धा उत्पन्न करने की बजाय उसके उत्तम धार्मिक और नैतिक तत्वों को हृदयङ्गम करने की श्रेष्ठ रीति का प्रादुर्भाव किया गया है। पहले उच्च भाषा-शिक्षा में साहित्य के इतिहास पर विशेष ज़ोर दिया जाता था, परन्तु अब उसकी जगह उत्तम कवियों और ग्रन्थकारों की पुस्तकें पढ़ाने पर ज़ियादा ज़ोर दिया जाता है और तद्वारा साहित्य का इतिहास गौण दृष्टि से पढ़ाया जाता है। भाषा-शिक्षा केवल इसी लिए महत्व की नहीं समझी गई है कि अच्छी तरह लिखना-पढ़ना या व्याख्यान दे देना आ जावे, परन्तु इसलिए कि उसका नित्य के व्यवहारों में उपयोग हो और उसके द्वारा परिस्थिति का ठीक ज्ञान हो जावे। केवल राजाओं की जन्म मृत्यु की तारीखें और सन् रट लेने तथा वंशावली याद कर लेने की इतिहास पढ़ाने की रीति अब उठ गई, और उसकी जगह इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाता है कि इतिहास के द्वारा विद्यार्थियों को मुख्य घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध तथा कार्य्य-कारण भाव विदित हो जाय। सङ्गीत विद्या ड्राइङ्ग और अन्य विषयों द्वारा अभिरुचि को सुसंस्कृत कर उस का योग्य मार्ग द्वारा पोषण होने लगा। उचित व्यायाम द्वारा शारीरिक उन्नति होकर उसके द्वारा मन के विकास में सहायता पहुँची। इस प्रकार से धनिक और मध्यम स्थिति के गृहस्थों की कन्याओं के लिए प्रौढ़ावस्था में गृहिणी बनने पर अपने कर्तव्य कर्म सुचारु रूप से करने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उन गुणों की प्राप्ति के लिए जिस प्रकार की शिक्षा आवश्यक थी, उस

प्रकार का शिक्षा क्रम यहां के शिक्षा विषय-पटु विद्वानों ने सम्मति से देश कालानुसार निर्धारित किया। मध्ययुग (dark age) और इसके बाद दो तीन शताब्दियों तक स्त्री शब्द की व्याप्ति यहीं तक समझी जाती थी कि वे गृह का अलङ्कार हैं, पुरुषों के सुख और समाधान के लिए एक साधन हैं, परन्तु अब उस कल्पना का समूल विच्छेद हो कर यह मत स्थापित हुआ है कि स्त्री भी पुरुष के समान एक स्वतन्त्र व्यक्ति है और उसकी शक्तियों का भी सब ओर से सम्पूर्ण विकास होना आवश्यक है। इस विकास के लिए अनेक पुरुष तथा स्त्रियों ने सिर तोड़ परिश्रम किये, और उनके ही परिश्रम के सुफल जर्मनी में वर्तमान के होअर मेड्शेन् शूल हैं।

इन मेड्शेन् पाठशालाओं में लड़कियों की उम्र के लिहाज से प्रति सप्ताह १८ से ३२ घण्टों तक शिक्षा दी जाती है। हर एक विषय को इस प्रकार समय दिया जाता है— धर्म २ घण्टे, जर्मन भाषा निचली श्रेणियों में ८-६ घण्टे और ऊपर की श्रेणियों में ४ ५ घण्टे, भूगोल २ घण्टे, गणित ३ ४ घण्टे ड्राइङ्ग २ घण्टे, कसीदे का काम २ घण्टे, सङ्गीत २ घण्टे और व्यायाम २ घण्टे। चौथे वर्ष के प्रारम्भ होने पर सृष्टि ज्ञान ४ घण्टे, फ्रेंच भाषा ८ से ६ घण्टे, और पाचवें वर्ष से इतिहास २ घण्टे इसके बाद सातवें और उसके बाद के वर्षों में अंग्रेजी ५ घण्टे सिखलाई जाती है। इस पर से यह बात स्पष्ट है कि उच्च श्रेणियों में तीनों भाषाओं को बराबर २ चार २ घण्टे दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त यदि किसी की इच्छा हो तो उसे दो दो घण्टे सीना पिरोना और लघु लेखन कला भी सिखलाई जाती है।

विश्वविद्यालय।

स्टूडिएन् आन्स्टाल्ट (विश्व विद्यालय की प्रथम सीढ़ी) का अध्ययन-क्रम बहुधा मेड्शेन शूल की चार श्रेणियों के समान रहता है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें इंग्लिश भाषा का एक घण्टा कम करके इतिहास को दिया जाता है। गणित को ५ घण्टे दिये जाते हैं और कसीदे का काम निकाल दिया जाता है। लेटिन को ३ घण्टे दिये जाते हैं, परन्तु यह विषय कन्या की इच्छा पर निर्भर रहता है। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो ओबर रेआल्शूल के जैसा अभ्यास इसमें भी हो जाता है, और जहा पूर्णत्व का प्रमाण पत्र मिला कि उस कन्या के लिए विश्वविद्यालय का द्वार खुल जाता है। एक बात ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि जिस प्रकार हमारे भारतवर्ष के पुराने पण्डितो का कहना है कि स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है, उसी प्रकार सन् १८६२ तक जर्मनी में भी स्त्रियो को विश्वविद्यालय के पवित्र मन्दिर में पाव रखने का अधिकार नहीं था। प्रथम ही प्रथम सन् १८६२ में बोडन् राज्य ने स्त्रियो को विश्वविद्यालय प्रवेश का अधिकार दिया, और इसके कोई चार पाच वर्ष बाद लज्जित हो कर प्रशिया ने भी उसी का अनुकरण किया। परन्तु तो भी वर्तमान समय तक बर्लिन युनिवर्सिटी में कुछ ऐसे भी मर्दानी बाने के प्रोफेसर मौजूद हैं, जो अपने लेक्चरों में स्त्रियो को नहीं आने देते

इस पर से पाठकगण भली भाति समझ गये होगे कि स्टूडिएन् आन्स्टाल्ट, ओबर रेआलशूल के, और मेड्शेन-शूल रेआलशूल को बराबरी के विद्यालय हैं ; तथा राज्य में

भी उनकी योग्यता इसी प्रकार की समझी गई है। तो भी ऐसा समझ लेना भूल होगा कि ये मेड्शेनशूल पाठशालायें रेआलशूल के उद्देशों पर स्थापित हुई हैं। मेड्शेनशूल बिलकुल स्वतन्त्र संस्था है, और उसके अभ्यास के विषय ऐसे चुने गये हैं कि जिससे स्त्रियों की नैसर्गिक प्रवृत्ति में वृद्धि हो और उसका उत्तमतया पोषण हो। इन दोनों संस्थाओं का भिन्नत्व दिखाने के लिए एक दो बातें लिख देना अनुचित न होगा। मेड्शेनशूल की शिक्षा में जर्मन भाषा तथा इतिहास और भूगोल पर जियादा जोर दिया जाता है और इन्हीं विषयों को अधिक घण्टे मिलते हैं, परन्तु रेआलशूल में गणित के समान बौद्धिक विषयों को जियादा घण्टे दिये जाते हैं। यदि बालिका की प्रवृत्ति गणित विषय की ओर न भी हो तो उसमें कोई बाधा नहीं आती। यदि उसने भाषा के समान अन्य विषयों में प्रवीणता प्राप्त कर ली तो प्रमाण पत्र मिल जाता है। अब हम मेड्शेनशूल और रेआलशूल की साम्यता का उदाहरण देते हैं। जिस प्रकार रेआलशूल में लेटिन और ग्रीक भाषाओं को स्थान नहीं दिया गया है, उसी प्रकार मेडशेनशूल में भी उसकी कुछ परवाह नहीं की गई है, तथा दोनों में ही नूतन भाषायें और शास्त्रों पर जियादा जोर दिया जाता है। मेड्शेनशूल का वार्षिक शुल्क रेआलशूल के समान ही अर्थात् ६० से १२० रुपये तक पड़ता है, परन्तु स्टूडियन् आनस्टाल्ट का शुल्क इससे अधिक, अर्थात् १२० रुपयों से भी ऊपर पड़ता है।

शार्लोटेनबर्ग के कन्या-विद्यालय का समय-विभाग पत्रक ।

श्रेणी	धर्म	जर्मन	फ्रेंच	इंग्लिश	इतिहास	भूगोल	गणित	प्रकृतिशास्त्र	लेखन	ड्राइङ्ग	कसीदा	गायन	व्यायाम	कुल घण्टे
१	३	१०	०	०	०	०	३	०	०	०	०	१	१	१८
२	३	१०	०	०	०	०	३	०	०	०	०	१	१	१८
३	३	९	०	०	०	०	३	०	३	०	२	१	१	२२
४	३	६	६	०	०	२	३	२	१	२	२	२	२	३१
५	३	५	५	०	२	२	३	२	१	२	२	२	२	३१
६	३	५	[illegible]	०	२	२	३	२	१	२	२	२	२	३१
७	२	४	४	४	२	२	३	३	०	२	२	२	३	३३
८	२	४	४	४	२	२	३	३	०	२	२	२	३	३३
९	२	४	४	४	२	२	३	३	०	२	२	२	३	३३
१०	२	४	४	४	३	२	३	२	०	२	२	२	३	३३
	२६	६१	३२	१६	१३	१४	३०	१७	६	१४	१६	१७	२१	

स्त्रियां और औद्योगिक शिक्षा।

जर्मनी में स्त्री शिक्षा का एक और तरीका है। हमारे हिन्दुस्थान में आजकल उसका अस्तित्व ही नहीं है और न कभी होने की आशा है। वह तरीका यह है कि स्त्रियों को उनके योग्य उद्योग धन्धों की शिक्षा दी जाती है। यूरोप में ऐसा कोई कानून, तथा धार्मिक या सामाजिक नियम ही नहीं है कि स्त्रियों को विवाह करना ही चाहिए। इसके सिवा विशेष कर जर्मनी में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कोई नौ लाख अधिक है। तीसरा सब से बड़ा कारण यह है कि कुछ आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों के कारण स्त्रियों की विवाह मर्यादा कुछ अधिक बढ़ गई है। आपको वहां २७ या २८ वर्ष तक की उम्र की ऐसी अनेक स्त्रियां मिलेंगी, जिनका विवाह नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त उन्हीं आर्थिक और अन्य कठिनाइयों के कारण इतनी जियादा उम्र तक भी विवाह हो सकेगा या नहीं, इसका उन्हें कोई विश्वास नहीं रहता। अतएव ६ लाख स्त्रियों को पति का मिलना असम्भव होने के कारण, अथवा वरों को द्रव्याभाव या अन्य कठिनाइयों के कारण, तथा वधुओं को विवाह-रज्जु में बँधकर अपना स्वातन्त्र्य गँवाना पसन्द न होने के कारण जर्मनी में १८ वर्ष से लगाकर ३० वर्ष तक की अविवाहिता स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक है। आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयों के कारण मध्यम स्थिति के लोगों को तथा बहुत से धनाढ्य पुरुषों को भी कौटुम्बिक प्रेम के कारण ऐसी लड़कियों का इतनी उम्र तक लालन पालन करना बड़ा कष्ट साध्य विदित होता है। अतएव ऐसी अविवाहिता स्त्रियों

को अपने जीवन निर्वाहार्थ किसी दूकान पर लेखक का क्रय विक्रय करने का, पोष्ट, तार और टेलिफोन का, तथा आफिसों में लेखिका का या दाई तथा परिचारिका का कोई न कोई धन्धा करना ही पड़ता है। जर्मनी में सन् १६०७ की मर्दुमशुमारी में इस प्रकार के धन्धे करनेवाली स्त्रियों की संख्या कोई ४० लाख से भी ऊपर निकली थी। इन धन्धों को वे सुचारु रूप से तथा योग्य प्रबन्ध के साथ कर सकें, इसलिए उपर्युक्त धन्धों का ज्ञान प्राप्त करना परम आवश्यक बात है। दूकानदारी, लेखिका आदि धन्धों में उनको पुरुषों से बराबरी और स्पर्धा करने का मौका आता है। अतएव उपर्युक्त पेशों में निपुणता प्राप्त करना उनके लिए एक परमावश्यक बात है। उनको इस प्रकार शिक्षा देने के हेतु उत्तम उत्तम औद्योगिक विद्यालयों की स्थापना हुई है, जिनको कि 'शूल पयूर फ्रावेन् वेरुफ' अर्थात् 'स्त्री-औद्योगिक विद्यालय' कहते हैं। जिस प्रकार रेआलशूल की शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियों के लिए कमर्शियल, टेकनिकल और मेडिकल विद्यालय हैं, उसी प्रकार मेड्शेनशूल की शिक्षा प्राप्त या उस पाठशाला में कुछ वर्ष पढ़कर काम-धन्धा सीखने की इच्छा रखनेवाली कुमारिकाओं के लिए ये विद्यालय हैं।

औद्योगिक विद्यालय।

इस औद्योगिक विद्यालय के चार विभाग रहते हैं प्रथम धन्धों का साधारण परिचय करानेवाला विभाग, दूसरा व्यापारी शिक्षा का, तीसरा बालोद्यान शिक्षा की अध्यापिका और दाई का और चौथा विभाग हस्त-कौशल के छोटे २ काम करने के बाद उसी में अध्यापिका तैयार करने

का रहता है। लड़कियां अपनी इच्छानुसार चाहे जिस विभाग की शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। प्रत्येक विभाग का अभ्यास दो से तीन वर्ष तक का रहता है। प्रथम वर्ष व्यवसाय का सामान्य ज्ञान कराया जाता है और दूसरे वर्ष विषय का प्रत्यक्ष और विशिष्ट ज्ञान दिया जाता है। जर्मन, फ्रेञ्च और इङ्गिलश के समान कोई एक भाषा, पत्र व्यवहार और लघु लेखनकला ये विषय सब विभागों में आवश्यक हैं। विषय और श्रेणियों के अनुसार प्रति सप्ताह २४ से ३० घण्टे तक शिक्षा दी जाती है, और शुल्क ८० या ८१ रुपये के लगभग देना पड़ता है।

संख्या।

यदि हम सम्पूर्ण जर्मनी की स्त्री शिक्षा की पाठशालाओं की संख्या निकालने बैठेंगे तो यह एक कष्टदायक काम होगा। अतएव हम यहाँ केवल प्रशिया के ऑंकड़े देते हैं। प्रशिया राज्य सम्पूर्ण जर्मनी के ½ हिस्से के बराबर है अतएव इसके ऑंकड़ों पर से ½ भाग की कल्पना हो जाना सुगम है। अनेक बातों में वहाँ प्रशिया राज्य का महत्व हो सब से जियादा है और वही एक आदर्श राज्य समझा जाता है। सन् १९११ में वहाँ के शिक्षा विभाग के मन्त्री ने एक रिपोर्ट निकाली थी। उसके अनुसार उस वर्ष प्रशिया राज्य में कुल 'हाअर मेड्शनशूल' ४२६ थे। इनमें विद्यार्थिनियों की संख्या १५०००० थी। ये सब पाठशालायें म्युनिसिपेलिटी की हैं। इनको राज्य की ओर से कुछ सहायता मिलती है और साधारणतया राज्य की देखरेख भी रहती है। इसके सिवा व्यक्तिगत प्रयत्नों से चलनेवाली पाठशालाओं की संख्या बहुत अधिक अर्थात् कोई २२८ थी, किन्तु इनमें पढ़ने-

वाली विद्यार्थिनियों की संख्या म्युनिसिपल पाठशालाओं से बहुत कुछ न्यून अर्थात् कुल ४०००० ही थी। इस अन्तर का कारण समझ लेना कुछ कठिन प्रतीत न होगा। जिस समय मेड्शेनशूलों का जन्म हुआ था—उनकी स्थापना हुई थी—उस समय वे पाठशालाएँ केवल व्यक्तिगत सहायता पर अवलम्बित थीं और उनकी उन्नति भी उसी स्थिति में हुई थी, परन्तु जब म्युनिसिपेलिटी की ओर से भी इसी प्रकार की पाठशालाएँ कायम हो गईं तब इन व्यक्तिगत पाठशालाओं की उन्नति रुक गई। इन पाठशालाओं में विद्यार्थिनियों की संख्या न्यून होने के कारण ये हैं कि म्युनिसिपेलिटी की पाठशालाओं का प्रबन्ध अच्छा है, तथा उन्हें द्रव्य की पर्याप्त सहायता मिलती है। इसके सिवा उनमें सुयोग्य अध्यापक और अध्यापिकाओं की नियुक्ति होती है। प्रशिया में अध्यापिकाओं के लिए लेरेरिनेन सेमिनार ८ हैं। इनमें पढ़ी हुई अध्यापिकाएं ओवर-लेरेरिन (उच्च अध्यापिका) के पद तक पहुँच सकती हैं, परन्तु तो भी वह पद अधिकांश में विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त अध्यापिकाओं के हिस्से में पड़ता है। यदि किसी महिला ने सेमिनार की शिक्षा प्राप्त की हो, अथवा विश्वविद्यालय की शिक्षा भी पाई हो, तथापि वर्तमान काल में भी पुत्री-पाठशाला के डाइरेक्टर के पद पर कोई भी स्त्री पहुँच नहीं सकती है। बहुत करके इस पद पर पुरुष ही रहता है, इतना ही नहीं बल्कि असिस्टण्ट डाइरेक्टर का पद भी पुरुष को ही दिया जाता है। अध्यापक मण्डल में पुरुषों की संख्या कम से कम स्त्रियों के बराबर ही रहती है, परन्तु इसके विरुद्ध लड़कों की पाठशाला में एक भी स्त्री अध्यापिका नहीं रह सकती।

लिरसेएन्।

इसके अतिरिक्त प्रशिया में 'लित्सेएन्' नामक पुत्री पाठशालाओं की संख्या १५८ हैं। इसमें और मेड्शेनशूल में कोई विशेष फरक नहीं दिखाई देता। दोनों ही ओर शिक्षा-शुल्क और गरीब विद्यार्थिनियो की संख्या प्रति शत १० के परिमाणानुसार समान ही है। केवल एक बात इस लित्सेएन् में विशेष है और वह यह है कि इसमें अन्तिम परीक्षा नहीं ली जाती। दोनो ही ओर प्रत्येक श्रेणी में विद्यार्थिनियो की संख्या ४० से अधिक नहीं होती। कुल लेरेरिनेन् सेमिनार १३० हैं जिनमें सरकारी ७६ और व्यक्तिगत ५१ हैं। इसके सिवा यह नियम है कि इन्हीं के साथ एक एक 'युबुन्जशूल' (प्रैक्टिसिङ्ग स्कूल) होना चाहिए। स्टूडियन् आनस्टाल्ट सरकारी ३५ और व्यक्तिगत ३ हैं। तीनो प्रकार की पाठशालाओं की संख्या कुल मिलाकर ८०६ है। प्रशिया और अन्य रियासतो को मिलाकर स्टूडियन् आनस्टाल्ट की संख्या कुल ८६ है और उनमें पढनेवाली अध्यापिकाओं की संख्या सन् १९१० में ४६०० थी।

शिक्षकों की संख्या और वेतन।

प्रशिया में होअर मेड्शेनशूल और स्टूडियन् आनस्टाल्ट की कुल म्युनिसिपल, (अर्ध-सरकारी) पाठशालाओं में अध्यापकों की संख्या १८०० और अध्यापिकाओं की २६०० हैं। व्यक्तिगत (प्राइवेट) पाठशालाओं में अध्यापिकाओं की संख्या इससे कुछ अधिक रहती है। सन् १९१० में यह संख्या कोई ४६५४ थी। इसके सिवा यदि उतनी योग्यता

हो तो व्यक्तिगत पाठशालाओं में डाइरेक्टर का पद स्त्री को भी मिल सकता है। एक जानकार महाशय ने प्रशिया के डाइरेक्टरों का हिसाब निकाल कर बतलाया है कि प्रति शत ९१ पुरुष और ९ स्त्रियां इस पद पर हैं। अध्यापिकाओं को वार्षिक वेतन उनकी श्रेणियों के अनुसार १६५० से २००० और २००० से ४२०० मार्क तक मिलता है। डाइरेक्टरनी को इससे अधिक अर्थात् ७००० मार्क तक वार्षिक मिलता है।

प्रशिया में फ्रावेन्शूलों की सख्या ८५ है, जिनमें से ५० तो सरकारी और ३५ व्यक्तिगत हैं। इन पाठशालाओं में उपर्युक्त वर्णित कामों के सिवा अनाथ-सेवा नामक संस्था के प्रबन्ध कर्ता तथा सहायक प्रबन्धकर्ता का काम, मिल और गृह निरीक्षण तथा पुलिस इन्स्पेक्शन का काम, बालकों के आरोग्यगृह का निरीक्षण करना इत्यादि कामों के करने का ज्ञान सिखाया जाता है।

लड़के-लड़कियों को मिश्र-शिक्षा (को-एज्यूकेशन)।

जर्मनी में यह रीति नहीं है कि लड़के और लड़कियों को एक ही पाठशाला में तथा एक ही कक्षा में साथ २ शिक्षा दी जाय। जर्मनी में जो लोग शिक्षा-विषय के पंडित हैं उनकी वर्तमान समय तक भी यही सम्मति है कि यदि प्राथमिक पाठशालाओं में पुत्र-पुत्रियों को मिश्र शिक्षा दी जाय तो कोई हानि नहीं, परन्तु जब बालक-बालिकाओं में नैसर्गिक भावनाओं का उदय होने लगता है, उस समय उनको एक साथ बैठाकर शिक्षा देना अनुचित है। इङ्गलैण्ड में मिश्र शिक्षा का

उदाहरण देखते हुए भी जर्मनी में कोई विरला ही पुरुष मिलेगा जो मिश्र शिक्षा के लिए अपनी अनुकूल सम्मति दे। हां, प्रारम्भिक पाठशाला में बालक के साथ बालिका को भी प्रवेश करा लेते हैं, परन्तु उनकी श्रेणियां जुदी २ रहती हैं।

चतुर्थ भाग।

पहला अध्याय।

उच्च-शिक्षा।

हमने अपने प्रिय पाठकों को अब तक जर्मनी की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का परिचय कराया है, अब हम जर्मनी की उच्च शिक्षा के विषय में लिखते हैं। हमारे भारतवर्ष में यह समय नवीन विश्वविद्यालय स्थापना का है। सरकार ने ढाका में नवीन विश्वविद्यालय-स्थापना की मंजूरी दे दी है, हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित हो गया है। ऐसी सरकारी और गैर सरकारी किम्वदन्ती है कि पूने में भी एक विश्व-विद्यालय की आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि यदि ऐसे समय में जर्मनी के विश्वविद्यालयों की संक्षिप्त में पूर्वकथा, अन्तर्व्यवस्था, अध्ययन-क्रम, शिक्षक और विद्यार्थियों के सम्बन्ध में विस्तार सहित परिचय कराया जावे, तो वह हमारे देशवासियों के लिए अवश्य ही हितकर और सहायक होगा।

विश्वविद्यालय-स्थापना।

जर्मनी के विश्वविद्यालयों की स्थापना का समय ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दि और पन्द्रहवीं का आरम्भ है। फ्रान्स, इङ्गलैण्ड, इटली, स्पेन आदि देशों में इसके पहले से

ो विश्वविद्यालयो की सृष्टि हो चुकी थी, और इनके ही विशेषकर पेरिस विश्वविद्यालय के आदर्श पर जर्मन विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। पुराने जर्मन राष्ट्र में प्रथम ही प्रथम सन् १३३६ ई० में प्राग नगर में (यह नगर वर्तमान में आस्ट्रिया के अधीन है) विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसके पश्चात् एक विश्वविद्यालय सन् १४३५ ई० हायडलबर्ग में स्थापित हुआ। प्राग विश्वविद्यालय में शीघ्र ही दो पक्ष हो गये—एक तो जर्मनों का और एक बोहिमियनों का। इन दोनों पक्षों में झगड़ा हो जाने के कारण परिणाम यह हुआ कि वहां से जर्मन प्रोफेसर तथा विद्यार्थी निकल गये और उन्होंने सन् १४०६ में लाइप-ज़िग में एक नूतन विश्वविद्यालय की स्थापना की। इसके अतिरिक्त इसी समय कोलन्, एरफूर्ट रोस्टाक् आदि स्थानों में कोई दस बारह संस्थाओं का और भी जन्म हुआ। ये तमाम विश्वविद्यालय प्रथम से ही अध्यापक और विद्यार्थियों के लिए स्वतन्त्र संस्था समझे जाने लगे और उनके धर्म गुरु पोप और राजा की ओर से उन्हें विशिष्ट अधिकार प्राप्त होते गए। ये अधिकार मुख्यतर तीन प्रकार के थे—

(१) विश्वविद्यालय को पहला अधिकार यह था कि वह विद्यार्थियों को शिक्षा दे उनकी परिक्षा ले और 'बाका-लौरिउस्' (अ० ब्रेचलर) 'माजिस्टर' (अ० मास्टर) तथा डाक्टर की पदवियां दे। उस समय लोगों की यह भावना थी कि पोपका धर्म पीठ अर्थात् गद्दी चैादह विद्या और चौसठ कलाओं का घर ही है, अतएव उपर्युक्त अधिकार पोप या उसके प्रत्येक स्थान के प्रतिनिधि आर्च विशप की ओर से दिये जाते थे।

(२) दूसरा अधिकार यह था कि विश्वविद्यालय स्व अपने सङ्गठन के नियम बनाने के लिये स्वतन्त्र है। इसके द्वा इस संस्था को एक प्रकार से स्वायत्तता प्राप्त हो गई।

(३) इन विश्वविद्यालयों को तीसरा अधिकार यह था ये अपने अपने विद्यालय के अध्यापकों, प्रबन्धकर्त्ताओं औ विद्यार्थियो के झगड़ों का स्वयं न्याय कर सकते थे। इ अधिकार के कारण गुरु शिष्य का राज्य के न्यायालयों कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता था और न्यायालय का उन कुछ जोर भी नहीं चलता था। इसके सिवा इन संस्था को किसी भी प्रकार का कर नहीं देना पड़ता था। अधिकारों के अतिरिक्त राज्य की ओर से कुछ अन्य अधिक भी इनको प्राप्त थे। ये अधिकार ठीक तरह से कार्य्य परिणत कराने के अर्थ विश्वविद्यालय की अन्तर्व्यवस्था दो प्रकार की समितियाँ रहती थीं। उनमें से शिक्षा दे परीक्षा लेना आदि के लिए अध्यापकों की विषयानुसा 'फाकुल्टेट' अर्थात् शाखाएँ बना दी गई थीं। मध्य युग ये शाखाएँ चार प्रकार की थीं—(१) धर्म (२) कानू (३) वैद्यक और (४) अन्य सब विद्याओं की 'फाकुल्टास् आर्टि इम्'। प्रत्येक शाखा के अग्रस्थान में एक एक 'डेकान (अ डीन) रहता था। इन शाखाओं के मुख्य काम विषयो व विभाग और प्रबन्ध करना, वादविवाद कराना (जैसे हमारे यहाँ काशी जी में यह प्रणाली है कि विद्यार्थी के सम्मु एक विषय रखकर, उसपर भिन्न २ प्रकार की शङ्काएँ उप स्थित की जाती हैं और विद्यार्थी को उन शङ्काओं का शास्त्री रीति से खण्डन करना पड़ता है), परीक्षा लेना और उपाधि प्रदान करना इत्यादि थे। दूसरे दो अधिकारों को कार्य्य

परिणत करने के लिए यह प्रबन्ध किया जाता था कि विश्व विद्यालय के अध्यापक और विद्यार्थियों को प्रान्तवार या देश-वार विभाजित करके उन प्रत्येक पर 'प्रोकुराटेर' नाम का एक अधिकारी नियत कर दिया जाता था, और इन सब के ऊपर एक 'रेक्टर' नाम का अधिकारी, जोकि सब विश्व-विद्यालय का मुख्याधिष्ठाता समझा जाता था, चुन लिया जाता था। यह अधिकारी मण्डल सब प्रकार के न्याय कार्य और प्रबन्ध का काम करता था। यह सब प्रबन्ध पेरिस विश्वविद्यालय के आदर्श पर किया गया था। क्योंकि वहाँ हरएक देश के विद्यार्थी पढ़ते थे इसलिए वहाँ ऐसा प्रबन्ध करना आवश्यक था, परन्तु जर्मन विश्वविद्यालयों में इसका महत्त्व न होने के कारण उक्त प्रबन्ध शनै शनै शिथिल पड़ता गया।

अध्ययन-क्रम।

धर्मगुरु पोप जिन पुस्तकों की नियुक्ति कर देता था, तथा वह जिस प्रणाली को निर्दिष्ट कर देता था उन्हीं पुस्तकों और उसी प्रणाली से सब शिक्षा दी जाती थी। कहने का सारांश यह कि सब विषयों की शिक्षा धर्मगुरु के आज्ञानुसार ही दी जाती थी। चाहे धर्म हो, चाहे कानून हो और चाहे इतिहासादि अन्य विषय क्यों न हो, परन्तु सब शिक्षा पूर्व परम्परा के अनुसार ही दी जाती थी। अतएव उसमें विषयों की नवीनता, रीति की नवीनता और चिकित्सक बुद्धि का अभाव ही रहता था। बायबल, और उसपर पोप महर्षि का प्राचीन भाष्य, फिर क्या कहिये वह तो ईश्वर वाक्य के तुल्य समझा जाता था। कानून में श्रुति-वाक्य

और जस्टीनियन-कोड के अतिरिक्त अन्य कुछ सीखने को ही नहीं था। वैद्यक में भी उस समय हिपोक्रांटेस को यूरोप में वाग्भट्ट की पदवी मिल गई थी, और तत्वज्ञान में तो 'अरिस्टाटलोच्छिष्टम् जगत्सर्वं' जैसी स्थिति हो गई थी। अतएव ऐसी स्थिति में अध्यापक का काम था कि मूलग्रन्थों पर मल्लिनाथी करते हुए बैठे रहना और विषयों का समारोप कर देना रहता था। विद्यार्थियों का कर्तव्य गुरुजी के वाक्यों का श्रवण, मनन, और निदिध्यासन करना, तथा वादविवाद के समय उनका पुनरुच्चारण कर देना था। बस यहीं तक शिक्षा होती थी। अथवा यों कह लीजिये कि जटापाठ, घनपाठ के समान ही सब व्यवहार था। विद्यार्थी ने माजिस्टर (इ० मास्टर) की पदवी हासिल कर ली कि उसे फिर विश्वविद्यालय की अध्यापकी का अधिकार प्राप्त हो जाता था। परन्तु शिक्षा प्राप्त करके भी नौकरी का जिम्मा न होने के कारण बहुधा इन विद्यार्थियों को 'डिसप्यु-टेशन' अर्थात् वादविवाद करके पेट भरने के अतिरिक्त अन्य कोई आजीविका का मार्ग नहीं रहता था। इसीलिए मध्य युग में ऐसे सुशिक्षित 'ग्रेज्युएटों' के झुण्ड के झुण्ड उस विश्वविद्यालय से इस विश्वविद्यालय तक और इससे उस तक मारे मारे फिरते थे। इनमें से कुछ तो कविता आदि बनाकर लोगों को सुनाते और गाँव गाँव में भिक्षा माँगते फिरते थे। इस समय के विद्यार्थियों का सदाचार हद दर्जे तक गिर गया था। लैटिन भाषा की विपुल शिक्षा, और लैटिन के ही द्वारा अन्य विषयों की शिक्षा पाये हुए इन सैकड़ों पंडितों के लिए उपाध्याय आदि की इतनी जगहें कहाँ मिल सकती थीं? और इसीलिए इनमें से बहुतों को उपर्युक्त

'भिक्षां देहि' मार्ग स्वीकार करना पड़ता था। उस समय के भटकनेवाले विद्यार्थियों की बनाई हुई छोटी मोटी कविता अभी तक कुछ कुछ देखने को मिलती है जिसमें उन्होंने अपने जीवन की हृदयद्रावक और कुछ हास्योत्पादक स्थिति का अच्छा दिग्दर्शन किया है। जिन्होंने अंगरेजी साहित्य का अनुशीलन और अध्ययन किया है, वे समझ सकते हैं कि गोल्डस्मिथ कवि ने डा० प्रिमरोज के बड़े पुत्र का इटाली-प्रवास वर्णन किया है, जो बिलकुल इसी ढङ्ग का है।

धर्मक्रान्ति का परिणाम।

सोलहवीं शताब्दि के आरम्भ तक, अर्थात् धर्म क्रान्ति (रिफार्मेशन) के समय तक विश्वविद्यालयों के उक्त कार्यक्रम में कुछ भी फेरफार न हुआ। परन्तु जब महात्मा लूथर ने धार्मिक क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित की तब इन संस्थाओं में भी अनेक फेरफार हुए। एक ही देश में दो धार्मिक पन्थ होने के कारण नूतन पन्थ ने अपने नूतन विश्वविद्यालयों की स्थापना की। जिन रियासतों में धर्म क्रान्ति का परिणाम विशेष रूप से हुआ, उनमें नूतन पन्थ के उद्देशानुसार शिक्षा देने की आवश्यकता मालूम होने लगी और तदनुसार उन स्थानों पर नूतन विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। प्राचीन देवस्थानों के लिए राज्य की या प्रजा की ओर से जो बड़ी बड़ी रकमें खर्च की जाती थीं, उन सब रकमों का उपयोग अब उनमें न होकर नूतन संस्थाओं में होने लगा। इसी प्रकार की संस्थाओं में स येना (स्थापना सन् १५५८) मारबर्ग (स्थापना १५२७) आदि विश्वविद्यालय हैं। धर्म क्रान्ति और इन नूतन विश्वविद्यालयों की स्थापना के बीच में कोई २५

वर्ष का अन्तर था। इस पच्चीस वर्ष के समय में विश्व विद्यालय की शिक्षा बडी ही दीन-हीन हो गई थी। इसका कारण केवल यही था कि धर्म क्रान्ति के कारण लोगों में अविश्वास की मात्रा कुछ अधिक उत्पन्न हो गई थी। लूथर ने बायबल और उसके तत्वो की ओर जनता का मन आकर्षित कर धर्माचार्यों की अनेक चालाकिया प्रकट कीं। अतएव लोग यह समझकर कि विश्वविद्यालय की धर्म-शिक्षा केवल धर्माचार्यों का ढोंग मात्र है, उनसे घृणा करने लगे। यही हालत अरिस्टाटल के तत्वज्ञान तथा सृष्टि-शास्त्र की हुई। जब कि धर्म क्रान्ति का प्रवर्त्तक महात्मा लूथर स्वय कहा करता था कि "पेरिस विश्वविद्यालय की धर्म शिक्षा की शाखा 'सैतान मण्डली' है, तब उसके अनुयायी उक्त विश्वविद्यालय को और उसी के आदर्श पर स्थापित अन्य सस्थाओं को घृणा की दृष्टि से देखें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।" कुछ दिनो के बाद इस घृणा और उपेक्षा की मात्रा इतनी अधिक बढ गई कि सुयोग्य अध्यापकों को भी बडी कठिनाई से चार पाच विद्यार्थी न मिलते थे। हायडलबर्ग में तो अध्यापकों की अपेक्षा विद्यार्थियों की सख्या बहुत कम हो गई। परन्तु कहावत है कि 'क्रिया के बाद प्रतिक्रिया लगी ही रहती है' इसी न्याय के अनुसार कुछ दिनों बाद लोगों की आखें खुलीं, और उन्होंने यह विचारा कि केवल पुरानी बातो की निन्दा करने में ही समय और शक्ति का व्यय कर देना मूर्खता है। ऐसा विचार कर उन्होंने नूतन सस्थाओं की स्थापना का कार्य आरम्भ कर दिया। उसी का फल मारबुर्ग, येना और केनिग्जबर्ग के विश्वविद्यालय हैं। प्रत्येक रियासत के, इतना ही नहीं बल्कि बहुत से बडे २ शहरों के, लोगों में

यह महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई कि हमारे नगर में भी एक विश्वविद्यालय हो, और हमारे ही विश्वविद्यालय में हमारी भावी सन्तान और तरुण पीढ़ी सुशिक्षित बने। इसका परिणाम यह हुआ कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दि में विश्वविद्यालयो की संख्या प्रचुरता से बढ़ गई। दूसरा परिणाम यह हुआ कि विश्वविद्यालयो का राष्ट्रीय महत्व नष्ट होकर उसमें स्थानीयत्व का प्रवेश हो गया। प्राय इस समय इधर उधर भटकनेवाले विद्यार्थी मण्डल भी दृष्टि न आते थे।

इन नूतन विश्वविद्यालयो का भीतरी प्रबन्ध, उनके प्राप्त किये हुए तथा नैसर्गिक अधिकार, उनको अमल में लाने के लिए रेक्टर आदि अधिकारी-मण्डल, और चार शाखाएँ (फाकुल्टेज) इत्यादि सब बातें पहले के ही समान रहीं। प्रथम यह बात थी कि 'आर्टस् फेकल्टी' अन्य तीनो की नींव समझी जाती थी, उसी प्रकार वह अब भी समझी जाने लगी। पदवियां आदि में भी कोई फर्क न पड़ा। उस समय का इतिहास, उस समय का कानून आदि विषय पढ़ाये जाने लगे। धर्म शास्त्र, अर्थात् बायबल की शिक्षा पूर्व परम्परानुसार न देकर अब उसका शब्दार्थ और भावार्थ पढ़ाया जाने लगा। विशेष फर्क चौथी अर्थात् आर्टस फैकल्टी में इस प्रकार हुआ पहले सब दारमदार अरिस्टाटल पर रहता था, परन्तु अब उसके साथ प्राचीन साहित्य भी पढ़ाना आवश्यक हुआ केवल अरिस्टाटल की दृष्टि से नहीं)। इतिहास का सब से अग्रस्थान दिया गया। गणित और सृष्टि शास्त्रों को भी शनै शनै गौरव मिलने लगा, और इन तमाम विषयो को सिखाने के

लिए धीरे २ वैज्ञानिक पद्धति स्वीकृत होने लगी। पहले इस आर्ट्स फेकल्टी के विषयों को चाहे जो अध्यापक सिखा सकता था, इतना ही नहीं प्रत्युत एक ही अध्यापक बारी २ से व्याकरण, काव्य, न्याय, अलङ्कार और तत्वज्ञान आदि विषय सिखलाता था, परन्तु अब शनै शनै इस शैली का अवलम्बन किया जाने लगा कि विषय का चुनाव होकर उसको एक ही अध्यापक अन्त तक पढ़ाता रहे। वर्त्तमान काल के समान उस समय यह बात नहीं थी कि विषय का चुनाव और लेक्चर सुनना विद्यार्थी की खुशी पर अवलम्बित रहे, किन्तु विद्यार्थी को ठेठ पाठशाला के आदर्श पर जो कार्य्य-क्रम नियत था, उसी के अनुसार चलना पड़ता था। उदाहरणार्थ इसी बात को ले लीजिये कि सन् १५५८ में लाइपज़िक विश्वविद्यालय का अभ्यास क्रम इस प्रकार का था —पहला सेमेस्टर (टर्म)—ग्रीक और लैटिन, व्याकरण, न्याय और काव्य। दूसरा सेमेस्टर—व्याकरण और न्याय क्रमश, तथा वक्तृत्व-कला, तीसरा सेमेस्टर—काव्य, अलङ्कार क्रमश और वक्तृत्व कला, इसके सिवा गणित और पदार्थ-विज्ञान के मूलतत्व। इन तीन सेमेस्टरों के पीछे बाकालॉरिडस (अ० बचलर) की परिक्षा होती थी। इसके बाद दो वर्षों तक माजिस्टर की परीक्षा का अभ्यास करना होता था। इन दो वर्षों में ग्रीक और लैटिन ग्रन्थकारों के विषय में व्याख्यानों को सुनकर अरिस्टाटल का 'आर गनान' नामक ग्रन्थ का मूल पाठ पढ़ना पड़ता था। इसके सिवा प्रथम वर्ष पदार्थ-विज्ञान और अरिस्टाटल का नीति शास्त्र तथा दूसरे वर्ष में गणित सीखना पड़ता था। इन व्याख्यानों के साथ साथ 'यू बुग' (इ० मार्क्स) भी रहता था। इसमें विद्यार्थियों से अनुवाद

तथा निबन्ध लिखवाये जाते थे, और जब अध्यापक कुछ पढ़कर या बोलकर सुनाता था तब विद्यार्थियों को उसका अनुकरण करना पड़ता था। इन बातों पर से हमारे विज्ञ पाठकगण समझ सकते हैं कि प्राचीन ग्रीक और लैटिन ग्रन्थकारों के समान लिखना बोलना आ जाने तथा उनके ग्रन्थों पर मल्लीनाथी करने की परम योग्यता उत्पन्न हो जानेके अतिरिक्त शिक्षा का उद्देश अब तक भी कुछ उच्च न हो सका था। वर्तमान में शिक्षा का जो उद्देश है (अर्थात् प्रत्येक विषय का ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त कराकर शास्त्रीय चिकित्सा से विद्यार्थी को परिचित करा देना) उसको लाने के लिए अभी दो शताब्दियों का अवकाश था।

असन्तोष के बीज।

धर्म-क्रान्ति के बाद विश्वविद्यालयों में कुछ नवीनता अवश्य आ गई थी, परन्तु तो भी उनकी पुराण प्रियता, शिक्षा-प्रणाली में वही प्राचीन शैली का अवलम्ब, समय समय पर उत्पन्न हुए नूतन विषय और नई परिस्थिति की उदासीनता, इत्यादि कारणों से लोगों की श्रद्धा इन विश्वविद्यालयों से फिर भी उठती ही गई। इसके अतिरिक्त अध्यापकों का एक दुर्भेद्यपक्ष प्रबल हो चला था, और इसीलिए बड़े बड़े लोगों को उससे द्वेष होता गया। उन्होंने अपनी सन्तान को राज-नीतिक शिक्षा देने के अर्थ एक नये विद्यालय की स्थापना की, जिसका नाम 'रिटर आकाडेमी' था। धार्मिक वाद-विवाद से अलिप्त रहनेवाले—युनिवर्सिटी से उदासीन हुए—विद्वान् लोग नूतन 'आकाडेमी डर विस्सेन् शाफ्टेन्' के समान सस्थाएँ कायम करके उसके द्वारा ज्ञान प्रसार

करने लगे। इन उदासीन विद्वानों की उदासीनता इसी एक बात से ज्ञान हो जावेगी कि सन् १६७३ में स्पिनोझाके समान तत्ववेत्ताने हायडलबर्ग की प्रोफेसरी से साफ इनकार कर दिया था। गणित विषय का परम विद्वान् और तत्ववेत्ता लाइब्नित्स ने भी सन् १७०० में प्रोफेसरी को त्याग कर बर्लिन नगर में एक आकाडेमी डर विस्सेन् शाफ्टेन स्थापित कर ली थी। इस प्रकार से सत्रहवीं शताब्दि के अन्त तक विश्वविद्यालयो की यही दुर्दशा रही।

नूतन जाग्रति।

लगभग अठारहवीं शताब्दि के प्रथम चरण से स्थिति बदलने लगी, और इस शताब्दि के अन्त तक जर्मनी के कुल विश्वविद्यालय जाग्रत हो कर उच्च स्थिति को प्राप्त हुए। उनकी इस जाग्रति को देखकर लोगों ने भी उनका अच्छा आदर किया। इसका सब श्रेय हाल और गोटिंगेन् विश्वविद्यालयके प्रवर्त्तक तथा परम भाषाभिज्ञ टोमासिऊस् और तत्ववेत्ता फ्राक को है। जर्मनी में ही नहीं, परन्तु सारे यूरोप भर के विश्वविद्यालयो में जो एक प्रकार का नया जीवन और नई शक्ति आ गई, उसका मूल उत्पत्ति स्थान सन् १६७४ में स्थापित हुई हाल। युनिवर्सिटी है। इसके मुख्य कारण दो हैं। पहला कारण तो यह है कि उक्त विश्वविद्यालय ने अपने अभ्यास क्रम में बेकन्, लाक, डेकार्ट और स्पिनोझा आदि के नूतन और स्वतन्त्र तत्वज्ञान को तथा आधुनिक वैज्ञानिक शास्त्रों को प्रथम स्थान दिया था, और दूसरा कारण यह था कि हाल विश्वविद्यालय 'विचार-स्वातन्त्र्य और शिक्षा-स्वातन्त्र्य के नये उद्देश पर स्थापित हुआ था। परम्परागत

तत्वज्ञान को उसी प्राचीन शैली से पढ़ाना, यह ज्ञान और विज्ञान के पाँवो में एक बडी भारी जञ्जीर डालनेवाला है। परन्तु इस विश्वविद्यालय ने यह जञ्जीर अपने जन्म समय में ही तोड डाली। अतएव अब के विश्वविद्यालय दिन बदिन उन्नति करनेवाले विज्ञान के घर, सत्यान्वेषण के पृष्ठ-पोषक और बौद्धिक विषयो में अग्रगण्य गिने जाने लगे। इसके सिवा टोमासिउस ने सब से बडा और महत्व का सुधार यह किया कि अब तक सब शिक्षा लेटिन भाषा के द्वारा दी जाती थी परन्तु उक्त महात्मा के अश्रान्त परिश्रम से वह जर्मन भाषा (मातृभाषा) द्वारा दी जाने लगी। सब विषय नये तरीके से पढाये जाने लगे। सब से अधिक परि॰वर्तन 'धर्म' में हुआ। फ्राक ने एक नया ही 'पीएटीसम्स्' (Pietism) नामक अर्थात् भागवतधर्म निकाला और विश्वविद्यालय में उसी की शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। यह धर्म लोगो को इतना अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ कि उनके लिए झुड के झुड विद्यार्थियो की भीड होने लगी। फ्राक के ही नेतृत्व में तत्वज्ञान की शाखा अन्य तीनो के बराबर मान ली गई, और धर्म, कानून और वैद्यक के समान ही उसका भी महत्व गिना जाने लगा। सन् १७३७ में गोटिंगेन में (हनोव्हर प्रान्त में) एक विश्वविद्यालय की स्थापना हाल के आदर्श पर और हुई। जिस प्रकार से हाल में धर्म शाखा को, उसी प्रकार गोटिंगेन में कानून और गणित को बडा महत्व प्राप्त हुआ। इसके सिवा गोटिंगेन में प्रसिद्ध अध्यापको के हाथ नीचे चलनेवाली 'सेमिनार' नामक सस्थाओ की हालत सुधरकर वे एक आदर्श सस्था बन गईं। 'सेमिनार' सस्था उसे कहते हैं जिसमें तीक्ष्ण बुद्धिवाले, अपने अपने

अभ्यास में उत्तम रहनेवाले विद्यार्थी अपने प्रोफेसरों के मार्ग दर्शकत्व में, स्व स्व विषयो में अन्वेषणात्मक बुद्धि से एव परिश्रमपूर्वक काम करना सीखते हैं। इस सस्था के दो विभाग रहते हैं, एक तो नये विद्यार्थियों के लिए और दूसरा उनके लिए जिन्होने अपने विषयो में कुछ अधिक उन्नति कर ली है। बहुधा यह बात देखने में आई है कि ज्ञानप्राप्ति के मार्ग में-स्वय अपने पैरों पर खड़े होने में-तथा अन्वेषणात्मक बुद्धि का विकास करने में जितना उपयोग इन सेमिनारो का हुआ, उतना विश्वविद्यालयो के नित्य के व्याख्यानो से भी नहीं होता था। अतएव अन्य विश्वविद्यालयों में भी गोटिंगेन विश्वविद्यालय के नमूने पर सुधार होने लगा तथा इस प्रकार की सेमिनार पाठशालाएँ स्थापित हुईं। इसके अतिरिक्त गोटिंगेन में एक बात बड़े मार्के की हुई। वहाँ 'प्राचीन विद्या का पुन नये तरीके से जीर्णोद्धार हुआ। इस विद्या का प्राचीन ध्येय विद्यार्थियो को 'वादविवाद करने में निपुण बना देना था। उसकी जगह अब प्राचीन सस्कृति, प्राचीन इतिहास, और काव्यो का अन्वेषणात्मक बुद्धि से तथा रसिक वृत्ति से अभ्यास प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति को 'नाय ह्युमानिस्मुस्' (अंग्रेजी में न्यू ह्युमनिज्म) कहते हैं। ये दोनो सस्थाएँ राज्य की उत्तेजना तथा खर्च से चलती थीं। अतएव यद्यपि वे परतन्त्र हो गईं, परन्तु तो भी इनको पहले के विश्वविद्यालयो के समान सब अधिकार प्राप्त थे।

स्वतन्त्रता और परतन्त्रता।

उन्होने सबसे अधिक महत्त्व का एक नया अधिकार यह प्राप्त किया कि वे शिक्षा-स्वातन्त्र्य तथा विचार-स्वातन्त्र्य में

सर्वथा निष्कलङ्क थे। उनकी परतन्त्रता केवल द्रव्य की दृष्टि से थी। जबकि सब खर्च राज्य की ओर से दिया जाता था, तब राज्य का यह एक उचित अधिकार होना ही चाहिए कि वह ऊपरी बातों की देखरेख रक्खे, तथा हर समय प्रत्येक काम में उनकी सम्मति ली जावे। अध्यापकों को पर्याप्त वेतन मिलने लगा और इसी कारण वे विरक्त स्थिति से निकल कर समाज में तथा व्यवहार में मान सम्मान का बर्ताव करने लगे। वे लोग अब केवल सामाजिक विषयों में ही नहीं, प्रत्युत राजनीतिक विषयों में भी अपनी स्पष्ट सम्मति प्रकट करने लगे। उनको 'होफ्राट' 'गेहाइमराट' आदि उपाधियाँ भी मिलने लगीं तथा राज-दरबार में उनका खूब सम्मान होने लगा। वे एक खास तरह के अधिकारी समझे जाने लगे और उनको यह अधिकार दिया गया कि वे उन लोगों की परीक्षाएँ लें, जो दफ्तरों में, कचहरियों में तथा पाठशालाओं में नौकरी की इच्छा रखते हैं।

चतुरङ्गी सुधार।

अठारहवीं शताब्दि के अन्त में जर्मनी के लगभग सब विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध और अभ्यास क्रम में हाल और गोटिंगेन के नमूने पर क्रान्ति हो गई—उनकी तमाम पूर्व-व्यवस्था बदल दी गई। यह क्रान्ति केवल प्रोटेस्टण्ट सम्प्रदाय के लिए ही नहीं, बल्कि रोमन केथलिक संस्थाएँ भी उसमें सम्मिलित हो गईं। इस क्रान्ति का स्थूल रूप संक्षेप में निम्नलिखित चार बातों पर से मालूम हो सकता है। (१) शिक्षा के सब शास्त्रों में नूतन तत्त्वज्ञान और नूतन शास्त्रों का पूरी तौर से अधिकार हो गया। विशेषकर यह अन्तर चौथी

शाखा अर्थात् 'फाकुल्टास आर्टिडम' में हुआ, और इसी लिए उसका महत्व अन्य तीनों शाखाओं के बराबर गिना गया। अब उसका नाम 'फिलासोफीश फाकुल्टेट' अर्थात तत्वज्ञान की शाखा रक्खा गया। (२) यह बात सर्व सम्मति से निश्चित् हो गई, और अमल में भी आ गई कि सब अध्यापक विचारों में, वैज्ञानिक शिक्षा में तथा उसके प्रयोग में स्वतन्त्र रहें—वे अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से विद्यार्थियों को शिक्षा दें। यह स्वतन्त्रता सब रियासतों और राजाओं ने पूरी तरह मान ली। (३) पाठ्य प्रणाली सर्वथा नई स्थापित हुई। जहां नियमित पुस्तकों में से विद्यार्थियों को केवल अर्थ बोध कराते हुए अध्यापकगण बैठे रहते थे, वहां अब सुनियमित रीति से वैज्ञानिक व्याख्यान मालायें प्रारम्भ हो गईं। पहले की वाद विवाद प्रणाली बन्द होकर सेमिनारों की स्थापना हुई। अब इन सेमिनारों द्वारा विश्वविद्यालयों का मुख्य उद्देश यह हो गया कि इनके द्वारा विद्यार्थीगण स्वयं वैज्ञानिक रीति से काम करना सीखें—उनमें स्वतन्त्रता से अन्वेषण करने की पात्रता आ जावे। इनके सिवा सब शिक्षा मातृ भाषा द्वारा दी जाने लगी। (४) आज तक जो यह उद्देश रहता था कि विद्यार्थियों में लैटिन और ग्रीक लिखने बोलने का पूर्ण पाण्डित्य आ जाय, उस उद्देश पर पानी फिर गया, और अब इस उद्देश की स्थापना हुई कि लैटिन और ग्रीक का केवल इसी हेतु से अभ्यास किया जावे कि प्राचीन समय की उत्तम संस्कृति को हम ग्रहण कर सकें, और हमें उस समय की स्थिति से परिचय हो जावे।

आकाडेमीज् ।

हम ऊपर बतला आये हैं कि 'आकाडेमीज् डर विस्सेन शाफ्टेन्' नामकी संस्थायें सत्रहवीं शताब्दि के अन्त में और उसके बाद भी स्थापित हुईं। बहुधा हर एक विश्वविद्यालय में यह संस्था खुली हुई है और अनेक अध्यापक उसके सदस्य भी रहते हैं। इस संस्था का मुख्य हेतु यही रहता है कि विद्वानों के द्वारा नये नये आविष्कार कराये जायं। उसका यह हेतु नहीं है कि केवल मात्र एक शिक्षा ही दी जावे। इङ्गलैण्ड, फ्रान्सादि देशों में इन आकाडेमीज् का जितना महत्व है, उतना जर्मनी में नहीं। कारण यह है कि वहां पर स्वयं विश्वविद्यालय शिक्षा देने का काम करते हैं, और वे ही आविष्कार भी करते हैं। अन्य देशों के विश्वविद्यालय केवल शिक्षा ही देते हैं।

बर्लिन और नूतन उद्देश।

जर्मन विश्वविद्यालयों के इतिहास में सन् १८१० का साल स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है, क्योंकि इसी वर्ष बर्लिन विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। इस विश्वविद्यालय की स्थापन करने का सब श्रेय सुप्रसिद्ध मन्त्री, भाषा-कोविद, तथा तत्व वेत्ता 'फान हुम्बोल्ट' को है। यह समय एक बड़ा विकट समय था। एक तो नेपोलियन के साथ लड़ाइयां करनी पड़ती थीं और दूसरी ओर एक बड़ा भारी डर यह रहता था कि क्या अब प्रशियन राज्य रसातल को तो नहीं चला जायगा? ऐसे महाविकराल और सङ्कटग्रस्त समय में महाशय हुम्बोल्ट ने इस विश्वविद्यालय को स्थापित करने का

साहस किया। देश के धनवान् व्यक्तियो ने विना कुछ सङ्कोच के इस संस्था को मुक्त हाथो द्रव्य साहाय्य दिया और उसकी स्थापना की। इसमें प्रथम से ही प्रसिद्ध २ विद्वान् अध्यापक नियत किये गये थे, और सब प्रकार के साधनों की अनुकूलता प्राप्त हो गई थी। देश के लोगों ने उसको द्रव्य की भरपूर मदद दी थी। ऐसे समय में लोगो ने सहायता कर यह संस्था स्थापित की। अतएव यह बात जर्मन-साम्राज्य के लिए अत्यन्त भूषणास्पद है। यद्यपि नेपोलियन ने शारीरिक शक्ति में जर्मनो को चाहे जितना नीचा दिखाया हो, परन्तु मानसिक शक्ति में जर्मनी राष्ट्र इस समय भी कितना जाग्रत था, इसके लिए उपर्युक्त प्रमाण ही काफी है। जिस भारतवर्ष में हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए माननीय प० मदन मोहन मालवीय के समान उत्साही, विद्वान् और स्वार्थ त्यागी मनुष्य घर घर भिक्षा मागते फिरते थे, और फिर भी पर्याप्त धनराशि के एकत्र होने में बडी कठिनाई विदित हुई थी, उस भारतवर्ष के निवासियों को उपर्युक्त उदाहरण सर्वदा अपने सम्मुख रखना चाहिए। हाल और गोटिंगेन आदि विश्वविद्यालयों ने जिन नूतन उद्देशों की स्थापना की थी, वे उद्देश तो बर्लिन विश्वविद्यालय में मुख्यकर थे ही, परन्तु उन दोनो विश्वविद्यालयो में और इसमें एक बड़ा भारी अन्तर था। वह अन्तर यह है कि आज तक यह कल्पना रूढ़ थी कि 'विश्वविद्यालय शिक्षा देनेवाली एक संस्था है,' परन्तु बर्लिन विश्वविद्यालय ने इस संकुचित कल्पना को एक ओर धर दिया, और नूतन विश्वविद्यालय की इस उद्देश एवं आधार पर स्थापना हुई कि 'विश्वविद्यालय स्वतन्त्र वैज्ञानिक आविष्कारों का एक कार्यालय है।'

बर्लिन विश्वविद्यालय में पहले से ही उन व्यक्तियों और तत्ववेत्ताओं की नियुक्ति होती है, जिन्होंने वैज्ञानिक आविष्कारों में या किसी खास विषय में नाम कमाया है। उदाहरण के लिए इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि फिश्टे, श्लायर मास्वर आदि तत्ववेत्ता, तुलनात्मक व्युत्पत्ति शास्त्र का जनक बाप, जर्मन भाषा-कोविद बन्धु-युग्म ग्रिम्, सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता निबुर, राक मोमसेन्, यन्त्रशास्त्र का सुप्रसिद्ध विद्वान् हेलमोल्स इत्यादि महानुभाव बर्लिन विश्वविद्यालय में अध्यापक थे। हर एक जगह के प्रसिद्ध विद्वानों को अपने यहाँ स्थान देना इस विश्वविद्यालय का एक नियम ही हो गया है।। बर्लिन के आदर्श पर अन्य स्थानों पर भी विश्वविद्यालय स्थापित हुए। उदाहरणार्थ सन् १८११ में ब्रेसला में, १८१८ में बान तथा म्युन्स्टर में, १८१६ में म्युनिच में नये विश्वविद्यालय खोले गये। कुछ विश्वविद्यालयों ने बर्लिन का अनुकरण कर तदनुसार यथाशक्ति सुधार किये और कुछ बिलकुल बन्द हो गये।

विश्वविद्यालयों की संख्या।

जर्मनी में आज कल २१ विश्वविद्यालय हैं। उनमें से कुछ तो किसी खास विषय में बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ —बर्लिन—सब विषयों में, तथा विशेषकर आधुनिक वैज्ञानिक विषयों में सुप्रसिद्ध है।

बान—वनस्पति शास्त्र में प्रसिद्ध है।

गोटिंगेन—गणित और यन्त्र शास्त्र में प्रसिद्ध है।

म्युनिच्—विशेषकर वैद्यक में प्रसिद्ध है।

लाइपज़िक—भाषा, तत्वज्ञान और इतिहास में प्रसिद्ध है।

ग्यूविंगेन—कृषि विद्या में प्रसिद्ध है।

हायडल्बर्ग—स्थान की रमणीकता के लिए प्रसि है। अधिकतर यहां पर भाषा-शिक्षा प्राप्त करने के लि इंग्लिश तथा भारतीय विद्यार्थी बहुत से रहते हैं।

शेष विश्वविद्यालयों में उत्तम शिक्षा, उत्तम सामान त उत्तम प्रबन्ध अन्यो के ही समान है, परन्तु किसी कारण अधिक प्रसिद्ध नहीं है। इसके सिवा फ्राङ्कफर्ट में भी ए विश्वविद्यालय स्थापन करने का निश्चय हुआ था, और व सन् १८१४ में स्थापित होनेवाला था, परन्तु इसी समय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। एक विश्वविद्यालय हम्बर्ग में भ स्थापित होनेवाला है। सन् १८०७ से एक 'कलोनियल इन्स्टिट्यूट' नाम की संस्था स्थापित है। इसमें उन लोगं को शिक्षा दी जाती है जो जर्मनी के उपनिवेशों में जाक रहना चाहते हैं। उपनिवेशों में जानेवाले जर्मन अधिकारी व्यापारी और अन्य लोगों को उस देश की भाषा, इतिहास भूगोल, राजनीति और व्यापार की शिक्षा दी जाती है राज्य की ओर से प्रति वर्ष २० जर्मन अधिकारी इस संस्थ में शिक्षा प्राप्ति के लिए भेजे जाते है। इसके सिवा एक धन वान् व्यापारी ने 'लेक्चर हाल' बनवाकर वर्ष में कुछ महिने के लिए विद्वान् मनुष्यो द्वारा व्याख्यान दिलवाने का प्रबन्ध किया है। उपर्युक्त दोनो संस्थाएँ भी विश्वविद्यालय में ... ६ हानिप... हैं। अभी अभी ड्रेसडेन में एक विश्वविद्यालय स्थापना का आन्दोलन उपस्थित किया गया था, परन्तु उसमें कुछ सफलता प्राप्त होने के चिन्ह नहीं दीखते। पाठकगण! जर्मन विश्वविद्यालयों का यह संक्षेप में इतिहास दे दिया गया। अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि उनका वर्तमान में आन्तरिक प्रबन्ध किस प्रकार का है।

दूसरा अध्याय।

विश्वविद्यालयों का आन्तरिक प्रबन्ध।

गत अध्याय में हम यह बतला आये हैं कि जर्मनी के विश्वविद्यालय अठारहवीं सदी से राज्याधीन समझे गये थे। जबकि विश्वविद्यालयों का सब खर्च सरकार अपनी ओर से देती है और उसके स्थापनार्थ पुष्कल सहायता देती है, तब यह उचित ही था कि उनपर देखरेख रखने का अधिकार सरकार ने अपने हाथ में रख लिया। जर्मनी की सर्वसाधारण धाराओं अर्थात् कानूनों में स्पष्टता से यह उल्लेख हुआ है कि "विद्यालय और विश्वविद्यालय सरकारी संस्थाएं हैं, तथा उनका उद्देश यही है कि वे नवयुवकों को उपयोगी ज्ञान और वैज्ञानिक शिक्षा दें।"

विश्वविद्यालय से सरकार का सम्बन्ध।

उच्च शिक्षा की देखरेख का अधिकार भी विद्याविभाग के मन्त्री को दिया गया है। इस अधिकार को अमल में लाने के लिए मन्त्री के नीचे सहायतार्थ एक स्थान 'कुराटोर' (अ० क्युरेटर) अथवा 'कान्सलर' (अ० चान्सलर) का रहता है। इनमें का एक एक अधिकारी प्रत्येक विश्वविद्यालय में रहता है और वह उसके कार्य्य का निरीक्षण करता है। विश्वविद्यालय की सीनेट-सभा में वह सरकारी प्रतिनिधि की हसियत से सम्मिलित रहता है और वह इस ओर अधिक ध्यान रखता है कि सरकार के हित सम्बन्ध की पूरी

पूरी रक्षा हो। परन्तु विश्वविद्यालय और सरकार का हित-सम्बन्ध एक ही होने के कारण बहुधा किसी प्रकार का झगडा उपस्थित नहीं होने पाता। इतना ही नहीं प्रत्युत विश्वविद्यालयों को प्रदान किये हुए शिक्षा-स्वातन्त्र्य और उसके प्रबन्ध में जर्मन सरकार बिलकुल हाथ नहीं डालती। यह बात हमारी भारतीय सरकार को तथा लोगों को ध्यान में रखने योग्य है। कदाचित् इसी बात पर दुर्लक्ष होने के कारण कुछ वर्षों के पूर्व बम्बई-युनिव्हर्सिटी के कवोकेशन के समय उस समय के चान्सलर साहब ने जर्मनी के स्वतन्त्र विश्वविद्यालयों की और कर्जन साहब के बनाये हुए नियमों में जकडे हुए हमारे विश्वविद्यालयों की तुलना कर डाली थी। इस देश के विश्वविद्यालयों की जर्मन विश्वविद्यालयों से तुलना करते समय एक बात बिलकुल भुला दी जाती है। वह यह कि जर्मनी के विश्वविद्यालयों को (उच्च शिक्षा की संस्थाओं का इस बात को कभी भी भूलना न चाहिए कि जर्मनी के विश्वविद्यालय शिक्षा देनेवाली संस्थाएँ हैं, केवल परीक्षा लेनेवाली नहीं) सब कच्चा खर्च सरकार की ओर से दिया जाता है। उदाहरणार्थ, बर्लिन विश्वविद्यालय के लिए सरकार को प्रति वर्ष ४५००००० मार्कस् व्यय करने पडते हैं। लाइपझिक के विश्वविद्यालय का वार्षिक व्यय ३०००००० मार्कस् सरकार को ही देना होता है। इतना होते हुए भी इन विश्वविद्यालयों के आन्तरिक प्रबन्ध में सरकार बिना कारण कम जियादा नहीं करती। इतना ही नहीं, परन्तु जिन प्रोफेसरों का वेतन सरकारी कोष से दिया जाता है, उनको नियुक्ति का अधिकार भी विद्यालय की सीनेट-सभा के हाथ में रहता है। वह सभा चाहे जिसको प्रोफेसर नियुक्त कर सकती है।

आन्तरिक प्रवन्ध।

विश्वविद्यालय के आन्तरिक प्रबन्ध के लिए सेनाट्' (अ० सीनेट) नाम की सभा रहती है। इस सभा के सभासदों की संख्या प्रायः १८ से ऊपर नहीं होती। तमाम आर्डिनरी प्रोफेसरों ने अपने में से चुने हुए सभासद, चारों (कहीं कहीं ५) फकल्टी के डेकान् (अ० डीन्), विश्वविद्यालय का एक रिश्टर (अ० रजिस्ट्रार), एक प्रोरेक्टर और एक रेक्टर (अ० चान्सलर), का सिनेट में समावेश होता है। इस सभा का सभापति रेक्टर रहता है। बहुधा सिनेट तो एक वर्ष के पश्चात् और डेकान्, रेक्टर और प्रोरेक्टर प्रतिवर्ष चुने जाते हैं। प्रत्येक फकल्टी में से प्रतिवर्ष रेक्टर चुन लिया जाता है। परन्तु तत्वज्ञान की फकल्टी सब से बड़ी होने के कारण उसमें से एक वर्ष बाद भी रेक्टर चुना जा सकता है। रिश्टर की सम्मति से विश्वविद्यालय में नये विद्यार्थियों को प्रवेश कराना, विद्यार्थियों को नियमानुसार चलाना, यदि वे अनियमित कार्यवाही करें तो उचित दण्ड देना नियमादि बनाने तथा अन्यकार्यों के लिए जब सिनेट का अधिवेशन हो उस समय सभापति का काम करना इत्यादि। रेक्टर (चान्सलर) के मुख्य ये काम रहते हैं। प्रोरेक्टर इसलिए नियत किया जाता है कि वह रेक्टर का सहाय रहे तथा उसकी अनुपस्थिति में उसका काम करे जैसे हमारे देश में साधारणतया रजिष्ट्रार का काम रहता है, तद्नुसार ही विश्वविद्यालय के रिश्टर का काम समझिये। डेकान् अपनी अपनी फकल्टियों के सभापति रहते हैं। हरएक सेमेस्टर (टर्म) के व्याख्यानों का क्रम और समय निश्चित करना, 'प्रिव्हाट डोत्सेंट' (विश्वविद्यालय के ग्रेज्युएट को अवैतनिक

व्याख्यान देने का जो अधिकार दिया जाता है) की नियुक्ति करना, विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देना, यदि किसी अध्यापक की जगह खाली हुई हो तो सरकार को योग्य मनुष्यों की नियुक्ति के हेतु नाम बतलाना, परीक्षा के लिए परीक्षक मण्डल (बोर्ड आफ एक्ज़ामिनर्स) नियत करना, उपाधि प्रदान करना आदि कार्य्य आवश्यकतानुसार हरएक फकल्टी करती है। फकल्टी का सभापति डेकान् रहता है, और परीक्षा आदि कामों में उसकी सहायतार्थ एक 'प्रोकान्सेलर' भी फकल्टी चुन देती है। इस प्रकार से विश्वविद्यालयों का सब आन्तरिक प्रबन्ध सीनेट और फकल्टियाँ मिलकर करती हैं।

अधिकार।

जर्मनी की हरएक रियासत की धारा सभा में विश्वविद्यालय को सीनेट का एक सभासद रहता है। हम पहिले यह बात कह आये हैं कि इस सीनेट को बहुत प्राचीनकाल से अपने अधीनस्थ मनुष्य के न्याय करने का अधिकार है। यही अधिकार इस समय भी अव्याहत रूप से चल रहा है। यदि कोई विद्यार्थी या अध्यापक अनियमित कार्यवाही, बुरा बर्ताव, आज्ञाभंग, कर्ज़ा आदि करे तो उसको विश्वविद्यालय से निकाल देने का, २० रुपये तक दण्ड करने का तथा १५ दिन की कैद की सज़ा देने का सीनेट को अधिकार है। इसके लिए हायडलबर्ग, लाइपज़िक आदि स्थानों में स्वतन्त्र कारागृह बने हुए हैं। यदि कोई विदेशी जाकर उन्हें देखता है तो बड़ा आश्चर्य करता है।

बहुत से विश्वविद्यालयों में प्राचीन समय के अनुसार य तक भी केवल चार फकल्टियाँ हैं। १ धर्म, २ कानून, वेद्यक, और ४ तत्त्वज्ञान (फिलासफी)। अन्तिम शाखा अर्थात् तत्वज्ञान में भाषा, इतिहास, गणित तत्त्वज्ञान, त्र शास्त्र, प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र आदि आधुनिक षयों का भी समावेश हो जाता है। ज्यों ज्यों आधुनिक स्त्रों का महत्त्व बढ़ता गया, त्यों त्यों विश्वविद्यालयों को अपनी पाठ्य प्रणाली में उनका समावेश करना पड़ा, रि उनके लिए नई फकल्टी न बनाकर तत्त्वज्ञान की शाखा ही उन सब का समावेश कर दिया। 'स्टाट्सविस्सेनशाफ्ट' र्थात राजनीतिशास्त्र विषय भी नया है, और वह कानून फकल्टी में सम्मिलित हो सकता है, तथा कई स्थानों में ह उक्त फकल्टी में सम्मिलित भी कर दिया गया है। तो उसके लिए म्यूनिच और ट्यूबिंगेन के समान स्वतन्त्र श्वविद्यालय बने हुए हैं जिनमें इस विषय के लिए थक फकल्टियाँ खुली हुई हैं। कुछ स्थानों में भाषा, त्त्वज्ञान, इतिहास आदि बौद्धिक विषयों की 'फिलासोफिश ाकुल्टेट' है, और गणित, यन्त्र रसायन—प्राणि—वनस्पति ादि शास्त्र, जिनको सृष्टि विद्या कहते हैं उनके लिए दा ही 'नाटूरविस्सेन शाफ्टलिश फाकुल्टेट' है। फ्रायबर्ग, यडलबर्ग, स्ट्रासबर्ग ट्यूबिंगेन, आदि स्थानों में प्रोटेस्टण्ट र्मशाखा और कैथोलिक धर्मशाखा ये दो भिन्न भिन्न कल्टियाँ खुली हुई हैं। म्यून्स्टर का विश्वविद्यालय छोटा ने के कारण उसमें वैद्यक की शाखा नहीं है, अर्थात् यहाँ वल तीन फकल्टियाँ ही हैं। अब जो नये विश्वविद्यालय म्बर्ग और फ्राङ्कफर्ट में खुलेंगे, उसमें धर्मशाखा को उड़ाकर वल तीन शाखाएं ही रहेंगी।

इन फकल्टियों (शाखाओं) में विद्यार्थियों को सब विषयो की शिक्षा दी जाती है। लाइपझिक् विश्वविद्यालय में कृषि शिक्षा भी दी जाती है, तथापि अनेक स्थानो में इसके लिए निराले ही 'होरव् शूलेन' (कालेज), तथा आकाडेमीज् खुले हुए हैं।

शिक्षा-स्वातन्त्र्य।

जिस प्रकार से अध्यापको को शिक्षा देने के लिए किसी भी प्रकार का निर्बन्ध नहीं है अर्थात् नियमित पुस्तको को ही या नियमित विषय को ही सिखलाना चाहिए, ऐसा नियम नहीं है और हर एक अध्यापक अपना अपना विषय चाहे जिस प्रकार से और चाहे जितना सिखावे, उसी प्रकार से विद्यार्थियो को भी सीखने में पूरी पूरी स्वतन्त्रता रहती है। विद्यार्थी तो केवल अपनी खुशी के तीन विषय चुन ले और उसी के विषय में व्याख्यान सुना करे। उसके लिए भी यह बात नहीं है कि टर्म के सब समय में उसको उपस्थित ही रहना चाहिए, नहीं, केवल यह बात होनी चाहिए कि व्याख्यान के कागज़ पर विद्यार्थी का नाम लिखा रहे, तथा उसको व्याख्यान का शुल्कमात्र भर देना चाहिए। बस्, इतना ही विश्वविद्यालय के लिए पर्याप्त है, इससे अधिक उसका विद्यार्थी पर कोई अन्य अधिकार नहीं चल सकता। विद्यार्थी और शिक्षको की इस उभय पक्षी स्वतन्त्रता को 'आकाडेमिश फायहाइट' कहते हैं, और उसके लिए जर्मन विद्यार्थियो को बड़ा अभिमान है। किसी भी प्रकार की रुकावट के न होने से जहाँ नियमानुसार उपाधि प्राप्त करने में छः सेमेस्टर अर्थात् टर्मस लगती हैं, वहाँ सामान्य विद्यार्थियो के लिए

डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने में बहुधा दस ग्यारह सेमेस्टर लग जाते हैं जब विद्यार्थी गिमनासिउम् की नौ दस वर्ष की कड़े नियमों की शिक्षा और लैटिन ग्रीक की कचकच से मुक्त हो कर विश्वविद्यालय की स्वच्छन्द वायु में प्रवेश करते हैं, तब वे यह अनुभव करने लगते हैं कि अब हम पूर्णतया स्वतन्त्र हो गये। यहाँ पर प्रवेश करने के उपरान्त विद्यार्थी दो तीन समेस्टर तो अपनी युवावस्था का सुख लेने में ही व्यतीत कर देता है। हमारे बहुत से पाठकगण यह खयाल करने लगे होंगे कि इस समय की शिक्षा पर किसी भी प्रकार का दबा न होने के कारण शिक्षा में प्रमाद होने का सम्भव है। परन्तु नहीं, जर्मनी में उच्च शिक्षा की रचना ही इस ढङ्ग से की गई है कि बिना कठिन परिश्रम और दृढ़ विद्याभ्यास किये किसी को भी उपाधि नहीं मिल सकती। अतएव जिसको यह इच्छा है कि मैं विश्वविद्यालय की परीक्षा में उत्तीर्ण होऊँ, उसके लिए आवश्यक है कि वह स्वयं अच्छा विद्याभ्यास करे।

शिक्षा-क्रम।

विश्वविद्यालय की शिक्षा दो प्रकार से दी जाती है। (१) प्रथम तो प्रोफेसरों के शास्त्रीय प्रणाली के व्याख्यान होते हैं। इन व्याख्यानों को विद्यार्थी चाहे दो तीन सेमेस्टर तक न सुने, परन्तु इसके पश्चात् उनको सुनने ही पड़ते हैं। इन व्याख्यानों में केवल पुस्तकों को समझा देना ही नहीं पड़ता, प्रत्युत उनमें प्रत्येक विषय किस प्रकार से सीखा जाता है, इत्यादि तात्त्विक और वैज्ञानिक सूचनाओं का ही अधिक समावेश होता है। व्याख्यान की श्रेष्ठता का माप इसीसे नहीं होता कि

परीक्षा के लिए आव्हान होता है। यह परीक्षा प्रत्येक विषय में एक एक घण्टे तक ली जाती है। विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने में केवल यह देख लिया जाता है कि विद्यार्थी मुख्य विषय को सर्वाङ्गपूर्ण समझ गया है, और बाकी के गौण विषयों का भी उसे अच्छा ज्ञान हो गया है। इसके बाद उसको 'डाक्टर आफ फिलासफी,' या 'थियालजी,' अथवा 'मेडिसन,' और 'ज्यूरिसप्रूडन्स' आदि की मुख्य विषयानुसार उपाधि मिलती है। तमाम परीक्षाओं में विद्यार्थी की स्वयप्रदत्त बुद्धि द्वारा शास्त्रानुसार लिखा हुआ निबन्ध ही मुख्य प्रमाण समझा जाता है, और मुखाग्र परीक्षायें उसकी अपेक्षा गौण मानी जाती हैं।

सेमिनार का महत्व।

विद्यार्थियो का सब का सब महत्व का अभ्यास और वैज्ञानिक तरीके से विद्यार्थियो में स्वय काम करने की अभिरुचि बढ़ाने के लिए विश्वविद्यालयो के व्याख्यानो की अपेक्षा इन सेमिनारो का ही अधिक महत्व है। कारण यह है कि वहाँ पर विद्यार्थियो को ऐतिहासिक और चिकित्सक शैली से व्यवहारिक शिक्षा दी जाती है। एक जर्मन प्रोफेसर के इस कथन में बिलकुल अतिशयोक्ति नहीं है कि "अनेक प्रकार के नवीन आविष्कारो का तथा नये विचारो का जन्म विश्वविद्यालयों के इन सेमिनारो में ही हुआ है।" इसलिए इन सेमिनारों की युक्ति अर्थात् कथाओं पर प्राय विश्वविद्यालयो का बहुत कुछ दारमदार है। वर्तमान समय में विश्वविद्यालया के विद्यार्थियों की संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है और इसीलिए इन सेमिनारों का कार्य्य भी प्रोफेसरो की शक्तिके

बाहर बढ़ रहा है। (उदाहरणार्थ, सन् १६१३ में बर्लिन युनिवर्सिटी के रजिस्टर में बारह हजार विद्यार्थियों के नाम थे) इसका उचित प्रबन्ध करने के लिए धीरे धीरे इन्स्टिट्यूटों की सख्या बढ़ाई जा रही है तथा प्रोफेसरों के सहायतार्थ लेक्चरर्स और असिस्टण्ट देने का प्रबन्ध हो रहा है। उदाहरणार्थ, लाइप्झिक विश्वविद्यालय में तत्त्वज्ञान की शाखा (फिलासोफिश फाकुल्टेट) के अन्तर्गत इतिहास और भाषा विषय के इन्स्टिट्यूटों में अभी से अनेक 'असिस्टण्ट' और 'लेक्टोर' हैं, और दिनोदिन अधिकाधिक बढ़ाये जा रहे हैं।

शुल्क।

विश्वविद्यालय का प्रवेश शुल्क २१ मार्क हैं। जिन्होने माध्यमिक पाठशाला में नो वर्ष तक शिक्षा पाई है तथा जिनके पास उसकी परीक्षा का उत्तीर्ण पत्र है, उनको ही विश्वविद्यालय में प्रवेश करने का अधिकार रहता है। विदेशियों को यह प्रमाणित करना पडता है कि उनकी पूर्व शिक्षा उसी जोड़-तोड़ की है। ऐसा मालूम होता है कि जो यहाँ पर 'इण्टर पास कर ले उसको 'मात्रिकैल' अर्थात् विश्वविद्यालय प्रवेश का प्रमाणपत्र मिलना सम्भव है। जब प्रवेश हो जाता है तब प्रत्येक विद्यार्थी को इस हिसाब से शुल्क देना होता है —एक सप्ताह में किसी विषय का व्याख्यान जितने घण्टों तक होता है, उससे चौगुणा या पॅचगुणा शुल्क सेमेस्टर को देना होता है। उदाहरणार्थ, यदि चार चार घण्टे के चार व्याख्यान सुने, तो सेमेस्टर का शुल्क ६४ मार्क होते हैं। परीक्षा शुल्क २४० से ३५० मार्क तक रहता है। इसके अतिरिक्त जो निबन्ध पसन्द किये जाते हैं उनकी २०० छपी हुई

परीक्षा के लिए आव्हान होता है। यह परीक्षा प्रत्येक विषय में एक एक घण्टे तक ली जाती है। विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने में केवल यह देख लिया जाता है कि विद्यार्थी मुख्य विषय को सर्वाङ्गपूर्ण समझ गया है, और बाकी के गौण विषयो का भी उसे अच्छा ज्ञान हो गया है। इसके बाद उसको 'डाक्टर आफ फिलासफी,' या 'थियालजी,' अथवा 'मेडिसन,' और *'ज्यूरिसप्रूडन्स' आदि की मुख्य विषयानुसार उपाधि मिलती है।* तमाम परीक्षाओं में विद्यार्थी की स्वयप्रवृत्त बुद्धि द्वारा शास्त्रानुसार लिखा हुआ निबन्ध ही मुख्य प्रमाण समझा जाता है, और मुखाग्र परीक्षायें उसकी अपेक्षा गौण मानी जाती है।

सेमिनार का महत्व।

विद्यार्थियो का सब का सब महत्व का अभ्यास और वैज्ञानिक तरीके से विद्यार्थियो में स्वय काम करने की अभिरुचि बढ़ाने के लिए विश्वविद्यालयों के व्याख्यानो की अपेक्षा इन सेमिनारो का ही अधिक महत्व है। कारण यह है कि वहाँ पर विद्यार्थियो को ऐतिहासिक और चिकित्सक शैली से व्यवहारिक शिक्षा दी जाती है। एक जर्मन प्रोफेसर के इस कथन में बिलकुल अतिशयोक्ति नहीं है कि "अनेक प्रकार के नवीन आविष्कारो का तथा नये विचारो का जन्म विश्वविद्यालयो के इन सेमिनारों में ही हुआ है।" इसलिए इन सेमिनारों की युबुग अर्थात् कथाओं पर प्राय विश्वविद्यालयो का बहुत कुछ दारमदार है। वर्तमान समय में विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियों की सख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है और इसीलिए इन से मिनारों का कार्य्य भी प्रोफेसरो की शक्तिके

बाहर बढ़ रहा है। (उदाहरणार्थ, सन् १९१३ में बर्लिन युनिवर्सिटी के रजिस्टर में बारह हजार विद्यार्थियो के नाम थे) इसका उचित प्रबन्ध करने के लिए धीरे धीरे इन्स्टिट्यूटों की संख्या बढाई जा रही है तथा प्रोफेसरों के सहायतार्थ लेक्चरर्स और असिस्टएट देने का प्रबन्ध हो रहा है। उदाहरणार्थ, लाइप्ज़िक विश्वविद्यालय में तत्वज्ञान की शाखा (फिलासेफिश फाकुल्टेट) के अन्तर्गत इतिहास और भाषा विषय के इन्स्टिट्यूटों में अभी से अनेक 'असिस्टएट' और 'लेक्टोर' हैं, और दिनोदिन अधिकाधिक बढ़ाये जा रहे हैं।

शुल्क ।

विश्वविद्यालय का प्रवेश शुल्क २१ मार्क हैं। जिन्होने माध्यमिक पाठशाला में नो वर्ष तक शिक्षा पाई है तथा जिनके पास उसकी परीक्षा का उत्तीर्ण-पत्र है, उनको ही विश्वविद्यालय में प्रवेश करने का अधिकार रहता है। विदेशियो को यह प्रमाणित करना पडता है कि उनकी पूर्व-शिक्षा उसी जोड तोड की है। ऐसा मालूम होता है कि जो यहाँ पर 'इएटर पास कर ले उसको 'मात्रिकेल' अर्थात् विश्वविद्यालय-प्रवेश का प्रमाणपत्र मिलना सम्भव है। जब प्रवेश हो जाता है तब प्रत्येक विद्यार्थी को इस हिसाब से शुल्क देना होता है —एक सप्ताह में किसी विषय का व्याख्यान जितने घएटों तक होता है, उससे चौगुणा या पॅचगुणा शुल्क सेमेस्टर को देना होता है। उदाहरणार्थ, यदि चार चार घएटे के चार व्याख्यान सुने, तो सेमेस्टर का शुल्क ६४ मार्क होते हैं। परीक्षा शुल्क २४० से ३५० मार्क तक रहता है। इसके अतिरिक्त जो निबन्ध पसन्द किये जाते हैं उनकी २०० छपी हुई

प्रतिया विश्वविद्यालय को भेंट करनी होती हैं। इतना करने के बाद डाक्टर आफ फिलासफी या थियालजी, या ज्यूरिस्प्रूडन्स अथवा मेडिसन का छपा हुआ डिप्लोमा मिल जाता है। उस समय रेक्टर से अन्तिम हस्तान्दोलन होता है। परीक्षा का कोई भी समय निश्चित नहीं है। जहाँ विद्यार्थी की तय्यारी होचुकी कि फिर वह 'प्रोकान्त्सेलर' को सूचित कर निबन्ध पेशकर सकता है। इसके बाद बहुधा एक महीने के भीतर ही भीतर मुखाग्र परीक्षा का आव्हान होता है। इस परीक्षा के बाद उसमें उत्तीर्ण होने या न होने की बात उसी समय प्रोकान्त्सेलर कह देता है।

उपर्युक्त शुल्क के अतिरिक्त और भी कुछ छोटी-मोटी रकमें फीस की देनी होती हैं। अपने अपने विषय के इन्स्टिट्यूट की सालाना ३ मार्क, विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की आधा मार्क, क्रॉकेनकास्से (रोगावस्था में औषधि और सुश्रुषा) के लिए प्रति वर्ष २ मार्क, इस प्रकार सब मिलाकर यह फीस बहुधा ६ मार्क से ऊपर नहीं होती है। यदि दो वर्ष पश्चात् फिर उसी विश्वविद्यालय में रहना हो, तो पुन प्रवेश और माट्रिकेल आदि प्राप्त करना होता है; किन्तु उसके लिए नई प्रवेश फी केवल १० मार्कही देनी पड़ती है। यदि दूसरे विश्वविद्यालय में जाना हो तो सब शुल्क पूरा देना होता है। प्रत्येक सेमेस्टर को एक विश्वविद्यालय से दूसरे में जाने के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है और इसका लाभ बहुत से जर्मन विद्यार्थी लेते हैं। आप को कोई ऐसा विरला ही जर्मन विद्यार्थी मिलेगा, जिसने कम से कम दो-तीन विश्वविद्यालयों की सैर न करली हो।

तीसरा अध्याय।

जर्मन विद्यार्थी।

यह विषय जितना मनोरञ्जक है, प्राय उतनाही कठिन भी है; क्योंकि यह विषय अनेक प्रकार का है। यदि एक का ही वर्णन किया जाय तो एकदेशीयता का दोष आता है, और सब का वर्णन करना प्राय असम्भव है। जर्मन विद्यार्थी अपनी उम्रके १६ वें वर्ष बाद विश्वविद्यालय की शिक्षा लेना प्रारम्भ करता है। यह बात हम पहले ही कह आये हैं कि विद्यार्थियों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती है, अर्थात् कौनसे विषय लेना चाहिए, अभ्यास क्या करना होगा, कौन कौनसे प्रोफेसरों के व्याख्यान सुनना चाहिए, इत्यादि बातों में विद्यार्थी को पूर्ण स्वतन्त्रता है। हम कह सकते हैं कि बहुधा इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग नहीं किया जाता। हाँ, यह बात सत्य है कि विश्वविद्यालय प्रवेश के बाद दो तीन सेमेस्टर (टर्म) खेल कूद में व्यतीत किये जाते हैं, परन्तु यदि वास्तविक रीति से देखा जाय तो यह दोष पूर्व की ९ वर्ष की शिक्षा-पद्धति के सिर मढ़ना पड़ेगा। इसका कारण यही है कि इन ९ वर्षों में प्राचीन भाषाओं के निरर्थक अभ्यास में विद्यार्थी का इतना समय नष्ट हो जाता है और उसका इतना खून सूख जाता है कि उस में से निकलते ही किसी बन्द पींजरे में से निकलनेवाले पक्षी के समान उसकी दशा हो जाती है। उस समय विद्यार्थी के हृदय में अपनी स्वतन्त्रता का पूर्ण उपभोग लेने की अदमनीय इच्छा प्रदीप्त हो उठती है। जब वे

इस ६ वर्ष की कड़ी शिक्षा को पार कर बाहिर निकलते हैं, तब वे यह समझते हैं कि अब हम 'गेविल्डेटर' (जेंटिलमेन) होगये , और इसी भावना से प्रेरित होकर वे उपहार-गृह में, नाटक-गृह में तथा नौजवान लड़कियों के साथ उद्यानों और वनों में क्रीडा करने में, इत्यादि अनेक प्रकार के सुखों में गर्क हो जाते हैं । यदि केवल ये बातें एक ओर रख दी जायें तो कहना होगा कि जर्मन विद्यार्थी साधारणतया मेहनती, सदाचारी और मनमिलाऊ होता है । सब ही बातो में कुछ न कुछ अपवाद रहता ही है । उच्छृङ्खलता तो एक ओर रही, पर सामान्यतया जो अंग्रेज विद्यार्थी खेलकूद में होशियार है, उसके मुख पर दिखनेवाली होशियारी, चपलता और स्वाभिमान जर्मन विद्यार्थियो में बिलकुल नहीं दिखाई देता। जहाँ व्याख्यान समाप्त हुआ या इन्स्टिट्यूट का काम पूरा हुआ कि उनको खेलने की अपेक्षा किसी कुन्द वायु के काफी-गृह में बियर का ग्लास सामने रख कर घण्टों तक ऊँघते बैठे रहना अधिक अच्छा मालूम होता है । खेलो में से टेनिस्, क्रिकेट, फुटबाल के समान स्वच्छ वायु में खेले जानेवाले मर्दानी खेलो की अपेक्षा उन्हें व्यायामशाला में डम्बेल्स, बार, ट्रपीझ आदि जवानी खेल ही अधिक प्रिय मालूम होते हैं । तो भी आजकल युनिवर्सिटियों में स्पोर्ट क्लब, रूडर फराईन (बोटिङ्ग-क्लब) आदि अनेक तरीके निकले हैं और इसीलिए अब जर्मन विद्यार्थियं में धीरे धीरे खुली हवा के खेलो की अभिरुचि उत्पन्न होने लगी है । विशेषकर उन में बोटिङ्ग की अभिरुचि अधिक है । इसके सिवा फुटबाल भी लोगो को तथा विद्यार्थियों को प्रिय होता जारहा है। गोल्फ, हाकी (सर्द ऋतु में आइस-हाकी) आदि खेल भी विद्यार्थी खेलने लगे हैं । अब 'ईस्टर' के

समान छुट्टियों को विद्यार्थीगण छोटे छोटे प्रवास तथा सैर करने में व्यतीत करने लगे हैं। पर यदि मार्ग में कहीं 'वीयर गृह' मिल गया तो बहुधा सैरकी वहीं समाप्ति हो जाती है।

विद्यार्थी और अध्यापक।

बहुधा विश्वविद्यालयों के कई प्रोफेसर ईस्टर की छुट्टियों के समान अनध्यायों में अपने अपने सेमिनारों के विद्यार्थियों को साथ लेकर किसी ऐतिहासिक या सुप्रसिद्ध स्थलों के अवलोकनार्थ बाहिर जाते हैं। इस समय प्रोफेसर और विद्यार्थी एक दूसरे से बड़े खुले दिल से वार्तालाप करते हैं। एक दूसरे से दिल्लगी और मजाक करते हैं। साधारणतया जर्मन विद्यार्थी अपने प्रोफेसरों से अदब का बर्ताव रखते हैं। उन का यह डरपोक खयाल नहीं रहता कि जो कुछ भी गुरुजी कह दें वही 'ब्रह्मवाक्य' समझ लिया जाय। इसके विरुद्ध प्रोफेसर भी विद्यार्थियों को केवल लड़के समझकर उन्हें तुच्छ नहीं जानते, और विद्यार्थियों को भी प्रोफेसरों का फिजूल डर नहीं रहता। अध्यापक भी अपने विद्यार्थियों से कठोर बर्ताव नहीं करते हैं।

कोअर्स् अर्थात् फरबिण्डुगेन्।

जो विद्यार्थीगण 'कोअर' तथा 'बुर्शेनशाफ्ट' नामक विद्यार्थी मण्डलों में शामिल नहीं हैं, उनके विषय में ही उपर्युक्त वर्णन चरितार्थ हो सकता है। वर्तमान में दिनोंदिन ऐसों की ही संख्या बढ़ती जा रही है। इस समय प्रत्येक विश्वविद्यालय में 'कोअर' बुर्शेनशाफ्ट लाण्डस्मानशाफ्ट' नाम के अनेक मण्डल स्थापित हैं। यद्यपि मध्ययुग में भी 'लाण्डस्मानशाफ्ट'

(एक देश या प्रान्त के विद्यार्थियों का मण्डल) का अस्तित्व था, परन्तु विशेषकर इन का अस्तित्व १६ वीं सदी के प्रारम्भ में स्थिररूप से हुआ है। इन मण्डलों के स्थापनकर्त्ताओं का उद्देश महान् था। उदाहरणार्थ, 'बुर्शेनशाफ्ट' का देश में सुशिक्षा और धर्म का प्रचार करना उद्देश्य था सन् १८७०, के लगभग देश में स्वदेशाभिमान को फैलाने के हेतु कुछ मण्डलों की स्थापना हुई। कैसा भी हो, परन्तु बीस वर्ष पहले और बहुत करके आजकल के जमाने में भी इन की स्थिति कुछ भिन्न ही थी, और है। प्रत्येक मण्डल का पट्टा, टोपी और निशान जुदे २ और भिन्न भिन्न रंग के रहते हैं। 'फरबिण्डुंग (मण्डल) के समासदों में इस गुण का होना आवश्यक है कि वे एक दम में बहुत सी बीयर पी सकें, तथा द्वन्द-युद्ध के लिए हमेशा तैयार रहें। ऐसे मण्डलों के सभासदों की दिनचर्य्या साधारणतया निम्नलिखित है —

प्रात काल ६ १० बजे सोकर उठना, फिर भोजन के बाद पटे के हाथ खेलना, इसके पश्चात् नगर के आम रास्ते पर एकाध चक्कर लगा आना, और फिर किसी खास जगह पर बीयर पीते हुए बैठे रहना। मध्यान्ह को फिर पटा लकड़ी खेलना, यदि कहीं द्वन्द-युद्ध का आव्हान हुआ हो तो उसको खेलना और रात्रि को बीयर पीते हुए तथा विद्यार्थियो का गाना गाते हुए बैठे रहना इत्यादि। इस मण्डल के सभासदों को इस बात का बड़ा अभिमान रहता है कि उनमें बीयर पीने की शक्ति खूब है। द्वन्द-युद्ध में उनके मुख पर जो घाव लगते हैं (इस समय शरीर के अन्य अङ्ग सुरक्षित रहते हैं) उनको वे बड़े गौरवास्पद समझते हैं। इन मण्डलों में आप को शायद ही कोई विरला विद्यार्थी ऐसा मिले जिसके मुख और सिर

पर घाव लगकर यह विद्रूप न हुआ हो। किन्तु हमें आश्चर्य तो यही है कि जर्मनी की लडकिया भी ऐसेही विद्यार्थियो को अधिक पसन्द करती हैं। समय समय पर अनेक मण्डलों को मिलाकर एक कोमेर्स—बीयरपान का अड्डा—भरता है। इस समय प्रोफेसरों और अन्य मित्रों को भी निमन्त्रण दिया जाता है। उस समय का मुख्य कार्य्य केवल गाना-बजाना और बीयर पीकर आनन्द करना होता है। यह कोमेर्स सन्ध्या-समय भरता है, और उसका विसर्जन प्रात काल होता है। दो परस्पर विरोधी और कभी २ मित्रतायुक्त मण्डलों में भी द्वन्द-युद्ध होता है, उसको 'मेनसूअर' कहते हैं। बहुत करके द्वन्द युद्ध नये सभासद को करना होता है और उस को अपना कौशल्ल दिखलाकर अपने शूरत्व की तथा उसके मण्डल की कीर्ति स्थापित करनी पडती है। जबतक दोना ओर के वीर लडाके बिलकुल खूनाखून नहीं हो जाते, तबतक पट्टों के हाथ चलतेही रहते हैं। घावों की मल्हम-पट्टी करने के लिए डाक्टर तैयार रहता है। कभी आप 'कोमेर्स और मेनसूअर' का वर्णन किसी मण्डल के विद्यार्थी से सुनिये। उस समय सुननेवाले के तो रोमाञ्च हो जावेगा, पर कहनेवाला अधिकाधिक उसकी बडाई करने के जोश में आता जावेगा। प्रत्येक वर्ष जबकि युनिवर्सिटी का रेक्टर अपने कार्य्य का नया चार्ज लेता है उस समय, अथवा किसी अन्य उत्सवो के समय, जब सब मण्डलों के मुख्य २ वीर पुरुष रग रग की पोशाक करके और तरह तरह के झण्डे लेकर युनिवर्सिटी के पटाङ्गण में एकत्र होते हैं उस समय का वह अजीब दृश्य देखकर मन में यह भाव उदय होने लगता है कि उस मृतप्राय मध्ययुगी भपके को प्रदर्शनी अब तक

भी कैसे जीवित रह सकी ? एवं जो राष्ट्र संसार में सब से अगुवा बनने की कोशिश कर रहा है, उसमें इस मध्ययुगी भपके का अस्तित्व अब तक भी कायम है ! यह बात सोच कर आश्चर्य होता है तथा हँसी भी आ जाती है।

सुधार ।

इसमें सन्देह नहीं कि जर्मनी के बहुतसे विचारवान् लोगों की प्रवृत्ति इस रुढि के नाश की ओर होती जारही है। इसके लिए आज दिनतक अनेक मण्डलों की स्थापना भी हो चुकी है, जैसे गायन मण्डल, पहलवानी-मण्डल, व्याख्यान अथवा अन्य विषयों का अभ्यास करनेवाले मण्डल इत्यादि इत्यादि। बारह वर्ष पूर्व जो विद्यार्थी उपर्युक्त 'कोअर' आदि में सम्मिलित नहीं थे, उनके स्थान स्थान पर 'फ्रायस्टुडेन्टेन् शाफ्ट' नाम के अनेक मण्डल स्थापित हुए थे। इनका उद्देश यही था कि विद्यार्थियों का सुधार करना और मुख्य कर द्वन्द युद्ध तथा बीयर आदि पीनेवाले जो प्राचीन मण्डल हैं, उन का नाश करना। हम ऊपर बतला चुके हैं कि विश्वविद्यालयों का अपने विद्यार्थियों पर कितना कम अधिकार रहता है। अतएव यद्यपि उनकी व्यक्तिस्वातन्त्र्य विषयक कल्पना कितनी भी बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो, परन्तु इस स्वतन्त्रता के नाम पर अनेक अत्युक्तियाँ भी होती हैं। कोई भी मनुष्य निश्चयरूपसे नहीं कह सकता कि इस पद्धति द्वारा विद्यार्थियों का बर्ताव, जैसा एक उत्तम नागरिक के लिए होना आवश्यक है वैसाही हो सकता है। यद्यपि विद्यार्थियों के व्यक्तिगत चरित्र पर किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष दबाव नहीं है, परन्तु वर्तमान के प्रबन्ध में अच्छी देखरेख रखना भी

असम्भव है। जर्मन विश्वविद्यालयों की शिक्षा में केवल मात्र यही एक दोष है। अनेक प्रतिभाशाली और विचारवान् प्रोफेसरों के मन में यह विषय रात-दिन घूमता रहता है, तथा वे इस दोष को दूर करने के लिए अनेक उपायों को सोच रहे हैं। उदाहरणार्थ, लाइपज़िक विश्वविद्यालय के एक सुप्रसिद्ध रेक्टर ने यह प्रस्ताव किया है कि नगर के बाहिर जो ज़मीन विश्वविद्यालय की पड़ी हुई है, वहाँ पर विद्यार्थियों के लिए छात्रालय बनाया जाय, तथा उसी के पीछे खुली हवा में टेनिस्, गोल्फ, हाकी आदि मर्दानी खेलों के लिए जगह तैयार की जाय। इस छात्रालय में वहीं पर रहनेवाले प्रोफेसर की देखरेख रहेगी। इस कार्य्य में द्रव्य की अनुकूलता का प्रश्न तो आवेगा ही, परन्तु सब से बड़ी कठिनाई यह है कि प्राचीन सभ्यता के भक्तजन तथा विशेषकर विद्यार्थीगण इस प्रकार से अपनी स्वतन्त्रता गँवाने के लिए तैयार नहीं हैं।

नये मण्डल।

जर्मन विश्वविद्यालयों में भिन्न भिन्न देशों तथा भिन्न २ प्रान्तों के विद्यार्थी सम्मिलित रहते हैं। विदेशी विद्यार्थी विशेषकर बर्लिन, लाइपज़िक और म्यूनिच के समान सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में अधिक रहते हैं। सन् १९१२ के अन्त में विदेशी विद्यार्थियों की संख्या लगभग ४५०० के ऊपर थी। इन विदेशी विद्यार्थियों तथा जर्मन विद्यार्थियों में परस्पर प्रेमभाव बढ़ाने के लिए तथा उसके द्वारा इंग्लैण्ड, अमेरिका, जापान और रशिया आदि राष्ट्रों की आकाँक्षाएँ एक दूसरे पर विदित होने के लिए, तथा आपस की गलतफहमी

दूर करने के लिए एक 'इन्टरनास्योनल स्टूडेन्टेन् फराइन' अर्थात् 'सर्व-राष्ट्रीय विद्यार्थी-मण्डल' नाम की संस्था स्थापित हुई थी। इस संस्था की स्थापना सन् १६१०-११ में कुछ अमेरिकन विद्यार्थी तथा वहीं के प्रोफेसरों की प्रेरणा से बर्लिन नगर में हुई। इस संस्था का उद्देश महान् तथा सब के स्वीकार करने योग्य था, और इसी कारण इसकी उन्नति बड़े झपाटे के साथ हुई। अन्य विश्वविद्यालयों ने भी उसका अनुकरण कर अपने २ यहाँ ऐसे मण्डलों की स्थापना की। यह मण्डल अपनी उद्देश सिद्धि के लिए अर्थात् परस्पर मैत्री भाव दृढ़ करने के लिए प्राय इन साधनों का अवलम्बन करता था—यथा (१) भिन्न भिन्न राष्ट्रों की परिस्थिति पर विशेषज्ञों द्वारा और विशेषकर उस देश के विद्यार्थियों द्वारा व्याख्यान दिलवाना, (२) सब को एकत्र कर नाच, गाना तथा नाटक आदि की व्यवस्था करना, (३) भिन्न भिन्न राष्ट्रों के विद्यार्थियों तथा प्रोफेसरों का किसी ऐतिहासिक और सुप्रसिद्ध स्थान देखने के लिए मिलकर जाना, तथा (४) वन-भोजन, सहल आदि के समान मैत्री भाव दृढ़ करने के साधनों का प्रयोग करना। सब सदस्यों की यही इच्छा रहती है कि किसी भी देश के विद्यार्थी के मन में कभी भी यह भाव उदय न हो कि मैं इस देश में अकेला हूं, प्रत्युत उस के मन में यह भाव उदय होना चाहिए कि परदेश में भी मुझ से प्रेम तथा सहानुभूति रखनेवाले मनुष्य वर्तमान हैं। इस मण्डल ने दो ढाई वर्ष में ही बहुत काम कर दिखलाया था। यदि वर्तमान का महायुद्ध न छिड़ गया होता तो हमें विश्वास है कि यूरोपीय राष्ट्रों में धीरे धीरे जो एक प्रकार की अग्नि सुलग रही थी, और अन्त में जाकर जिसने बड़ा भयङ्कर और प्रचण्ड रूप

धारण कर लिया है, उसको शान्तकर परस्पर बन्धुभाव स्थापन करने के लिये इन मण्डलो का कुछ अंश में तो अवश्य ही उपयोग होता। परन्तु भविष्यकाल के गर्भ में एक दूसरे ही प्रकार का विद्युत् संचार भीतर ही भीतर बढ़ रहा था, जोकि संसार को अन्धा बनाने की राह देखता था। उस के सम्मुख भला इन मण्डलो का अस्तित्व कैसे कायम रह सकता है?

महिलाएँ और उच्च-शिक्षा।

आजकल जर्मन विश्वविद्यालयो में स्त्रियाँ भी पढ़ने लगी है। सन् १८९२ तक लड़कियो को प्रवेश-परीक्षा में बैठने का अधिकार नहीं था, परन्तु उसी वर्ष प्रथम ही प्रथम हायडलबर्ग और अन्य दो स्थानो में स्त्रियो को यह अधिकार दिया गया। १८९६ में बर्लिन नगर में भी अधिकार दे दिया गया, पर लाइपझिक में कोई दस वर्ष पश्चात् जाकर यह अधिकार मिला। सन् १९०० में हायडलबर्ग में प्रथम ही प्रथम एक लड़की को डाक्टरी की परीक्षा में बैठने का अधिकार दिया गया और आजकल तो सब विश्वविद्यालयो में अनेक विद्यार्थिनियें शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। जर्मनी में अनेक उपाधि-धारी स्त्रियाँ भी हैं।

अभी कुछ वर्ष पूर्व लाइपझिक में स्त्रियो के लिए एक निराले कालेज की स्थापना हुई है। इस कालेज का यह उद्देश नहीं है कि वह अन्य विश्वविद्यालयो से स्पर्द्धा करे। किन्तु उद्देश यही है कि अन्य विश्वविद्यालयो में जो स्त्रियोपयोगी विषय नहीं पढाये जा सकते हैं, वह उनको पढाने का विशेष रूप से प्रबन्ध करे। जैसे कि बाल पोषण, संवर्धन, और उनकी शिक्षा तथा रोगियो की सुश्रूषा इत्यादि विषय जो कि [illegible]

महिलाओं के लिए अति आवश्यक हैं, उन्हीं की शिक्षा इस कालेज में दी जाती है। तथापि इस पर से यह न समझ लिया जावे कि इन विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों की वहाँ शिक्षा ही नहीं दी जाती। इस विद्यालय में चार विभाग किये गये हैं, पहिला इतिहास और तत्त्वज्ञान का, दूसरा सृष्टि-शास्त्रों का, तीसरा 'पेडोगाजी' अर्थात् शिक्षा शास्त्र का, और चौथा समाज शास्त्र, न्याय—शास्त्र का रखा गया है। इन में से प्रत्येक में भिन्न २ विषयो की शिक्षा दी जाती है। इस के लिए प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों की नियुक्ति की गई है। इन्स्टिट्यूट, सेमिनार, युबुंग आदि सब का प्रबन्ध युनिवर्सिटियों के समानही है। इस कालेज में हरएक विवाहित या अविवाहित स्त्री भरती की जाती है। किन्तु प्रवेश के लिए यह नियम है कि प्रवेशार्थी स्त्री के पास मेड्शेनशल की शिक्षा-समाप्ति का प्रमाण-पत्र होना आवश्यक है, या उसके पास अध्यापिका होने का प्रमाण-पत्र होना चाहिए। इस कालेज में वे ही स्त्रियाँ अधिक देखने में आई हैं जिनका विवाह हो चुका है और वे गृहस्थी के कार्य्य में पड चुकी हैं। सन् १६१३ के ग्रीष्म ऋतु में इस विश्वविद्यालय में ८७३ महिलाएं विवाहित थीं, और कुमारी कन्याएँ केवल ३५२ पढ़ रही थीं।

संख्या।

जर्मनी के विद्यार्थी और अध्यापकों की संख्या के अङ्क निम्न लिखित हैं। ये सन् १६१२ के अन्त तक के सही सही आँकड़े हैं।

नाम विश्व-विद्यालय	अध्यापक सब तरह के	विद्यार्थी			एक अध्यापक के हिस्से में विद्यार्थी
(१) सब विश्व-विद्यालयों को मिलाकर	३६७६	५८८४४ जिसमें स्त्रियां		३२१३	१६
(२) बर्लिन	५१५	६६०६	"	६०४	१६
(३) बांन	१६१	४१७६	"	२८६	२१
(४) लाइपज़िक	२६३	५३५१	"	१२६	२०
(५) रोस्टोकग्राईफ़्स में से सब से छोटा	६७	८८१	"	६	१३
(६) म्यूनिच	२७७	६५५६	"	२६२	२४

इन ५८८४४ विद्यार्थियों में ५३६३१ तो ख़ास जर्मनी के थे, और ४६४८ यूरोप के अन्य देशों के, (जिसमें २८४० रशियन, ६०० आस्ट्रो हंगेरियन, और १४५ ब्रिटिश) अन्य महा-द्वीपों के विद्यार्थी भी जर्मनी में हमेशा आते रहते हैं। सन् १६१२ के अन्त में सब विश्वविद्यालयों के मिलाकर ३३८ अमेरिकन, १८४ एशियाटिक, २८ आफ्रिकन और १ आस्ट्रेलियन विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। अन्य विश्वविद्यालयों की अपेक्षा बर्लिन विश्वविद्यालय में विदेशीय विद्यार्थी अधिक थे। अर्थात् उस में उनकी संख्या १६०५ थी।

इस सात करोड जन-सङ्ख्यावाले देश में इस समय २१ विश्वविद्यालय हैं, और यदि वर्तमान का महा युद्ध न छिडता तो तीन विश्वविद्यालय और भी खुलनेवाले थे। यदि उपर्युक्त सङ्ख्या के साथ हमारे भारतवर्ष की तुलना की जावे तो इस तेंतीस करोड जन सङ्ख्यावाले देश में कितने विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है? यदि उपर्युक्त सङ्ख्या पर ध्यान दिया जावे तो एक विश्वविद्यालय के योग्य विद्यार्थी तो अकेले पूने शहर में हैं। उपर्युक्त प्रमाण पर से अकेले बम्बई इलाके में ही ५ विश्वविद्यालय खुलने चाहिए। एक सिन्ध हैदराबाद में, दूसरा अहमदाबाद में, तीसरा बम्बई का पुराना, चौथा नये प्रकार का पूने में, और पाँचवाँ दक्षिण महाराष्ट्र के लिए बेलगाव या धारवाड में। इस प्रकार से जब सम्पूर्ण देश में उत्तम शिक्षा देनेवाले विश्वविद्यालय स्थापित होंगे, वह दिन बडा भाग्यशाली समझा जायगा। इस समय पूने में दो आर्टस कालेज है-एक इञ्जिनियरिंग का तथा दूसरा एग्रिकल्चर का। तीसरा हालही में स्थापित हुआ है। सासून हास्पिटल का मेडिकल स्कूल है, उसको बढ़ाकर स्वतन्त्र मेडिकल कालेज कर देना कोई असम्भव बात नहीं है। यह सब तैयारी पहले से है। ला कालेज खोलना पडेगा, अर्थात् वर्तमान के विश्व-विद्यालय के समान विश्वविद्यालय पूने में खुलेगा। इसके लिए विपुल द्रव्य की आवश्यकता है। पर यह कोई असम्भव बात नहीं है भारतीय सुपुत्रों ने बडे परिश्रम के साथ हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की, तथा गुरूकुल काङ्गडी के समान आदर्श विश्वविद्यालय स्थापन कर वे प्रशसनीय कार्य्य कर रहे हैं, परन्तु अभी देश को ऐसे कई विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है।

चौथा अध्याय।

अध्यापक।

जर्मन विश्वविद्यालयो में तीन प्रकार के अध्यापक होते हैं। आर्डिनरी प्रोफेसर, एक्स्ट्रा-आर्डिनरी प्रोफेसर और प्रिव्हाट् डोसेंट् (प्राइव्हेट-ट्यूटर)। जो विश्वविद्यालय का प्रोफेसर होना चाहता है, उसके लिए आवश्यक है कि वह किसी एक 'फेकल्टी' का डाक्टर हो। इसके बाद उसको उसके विषय के अपरिचित और असशोधित भाग पर एक पुस्तक लिखकर अपनी 'फेकल्टी' को अर्पण करनी पड़ती है। उस फेकल्टी का मुख्य प्रोफेसर उसकी बारीक जॉच करता है। यदि वह उसको पसन्द आ गई तो फिर उसका लेखक वार्तालाप के लिए बुलवाया जाता है। यह वार्तालाप एक प्रकार की मुखाग्र परीक्षा होती है। यदि परीक्षक को उसकी वार्तालाप से यह विश्वास हो जाय कि वह मनुष्य दृढ़ अध्ययनशील है, वह अपने विषय से अच्छा परिचित है, उसकी प्रतिभाशक्ति विकसित हो चुकी है तथा वह अच्छा चिकित्सक बुद्धि का है, तो बाद में उसको फेकल्टी की ओर से व्याख्यान देने की आज्ञा मिल जाती है। पहला व्याख्यान बड़ी उच्च कोटि का तथा परिश्रमपूर्ण होना चाहिए, क्योंकि उसको सुनने के लिए फेकल्टी के प्रमुख प्रोफेसर आते हैं। जिनको ऐसी आज्ञा मिल जाती है, उसको 'प्रिव्हाट् डोसेंट' कहते हैं। उसे व्याख्यानो की फीस अधिक नहीं मिलती, और व्याख्यान भी ऐसे विषय पर देना होता है जो कि मुख्य प्रोफेसर के व्याख्यान से बचा हुआ हो और वह

भी उस प्रोफेसर की आज्ञा से। कभी २ वह ज्यूनियर विद्यार्थियों का सम्मिलन भी करवा सकता है। परन्तु ये सब काम उसको पेट बाँधकर करने पडते हैं। इसके लिए उसको विश्वविद्यालय या विद्यार्थियों की ओर से कुछ भी द्रव्य-सहायता नहीं मिलती। जब तक वह कुछ ऊंचे दर्जे पर नहीं चढ़ जाता, तब तक उसे अपनी गाँठ से ही खाना पडता है। यदि इस अवसर में कोई धनवान् घराने की लडकी विवाह के लिए मिल गई तो बस, फिर उसकी सब चिन्ताएँ मिट जाती हैं। वहाँ विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों को बडे उच्च दर्जे का सम्मान मिलता है, इसलिए कभी न कभी 'फ्राउ प्रोफेसर' अर्थात् 'श्रीमती प्रोफेसरिन बाई' कहलाने का सौभाग्य प्राप्त होने की सम्भाव्य आशा से अनेक धनाढ्य-कन्याएँ ऐसे होनहार 'प्रिव्हाट् डोत्सेंट' ढूँढती फिरती हैं और उनके साथ बडी खुशी से विवाह कर लेती हैं।

प्रिव्हाट् डोत्सेंट से एक्स्ट्रा आर्डिनरी प्रोफेसर का पद बडा है। जिस समय एक मनुष्य प्रिव्हाट डोत्सेंट के पद पर रहता है, तब उसको ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक पुस्तकें और लेख आदि लिखकर अपनी योग्यता प्रमाणित करनी होती है, तब कहीं वह मौके २ से एक्स्ट्रा-आर्डिनरी के पद पर नियत किया जाता है, और सिनेट की ओर से उसे आज्ञा मिल जाती है कि वह अमुक विषय या उसके किसी भाग को सिखलावे। किन्तु इतना होने के लिए ही कोई पाँच-सात वर्ष तक राह देखनी पडती है। उम्र के २३ वें वर्ष से २५ वाँ वर्ष तक तो उसे डाक्टर होने में ही व्यतीत करना पडता है, और बाद में

चार पाँच वर्ष के परिश्रम करने के उपरान्त अर्थात् ३० वें वर्ष उसे कहीं प्रिव्हाट् डोत्सेंट होने का सौभाग्य मिलता है। यदि यही परिमाण रक्खा जाय तो वह अपनी उम्र के ३८ वें वर्ष जाकर एक्स्ट्रा-आर्डिनरी प्रोफेसर हो सकता है, और कई लोगों को तो जन्म भर इसी पद पर रहना पडता है। इन एक्स्ट्रा आर्डिनरी प्रोफेसरो को प्रति वर्ष १६०० से लगाकर ४८०० मार्क तक वेतन मिलता है। अर्थात् द्रव्य दृष्टि से देखा जाय तो इनकी और माध्यमिक शिक्षा देनेवाले प्रोफेसरो की स्थिति सम-समान ही रहती है। हाँ, यह बात जरूर है कि ये अपने व्याख्यानो के लिए फीस लगाते हैं, और वह आय उन को ही मिलता है।

इसके बाद सब से ऊँचा पद 'आर्डिनरी प्रोफेसर' का होता है। जो मनुष्य शिक्षा और वैज्ञानिक आविष्कारो में अति विख्यात होकर नाम कमाता है, उसी मनुष्य को यह पद दियाजाता है, और फिर भी कब? जब किसी विश्वविद्यालय में जगह खाली हुई हो तब। यह एक रूढ़ि सी पड गई है कि इक्कीसो विश्वविद्यालयो में से किसी का भी प्रोफेसर दूसरी जगह बुलाने पर जा सकता है, परन्तु इतना अवश्य होना चाहिए कि वह मनुष्य नाम कमाया हुआ तथा फेकल्टी के कार्य्य मे पूर्ण परिचित हो। ऐसी नियुक्तियाँ सीनेट की मजूरी और विद्यामन्त्री की अनुमति से हुआ करती है। इसका कारण यही है कि प्रोफेसर बडे उच्च दर्जे के सरकारी नौकर गिने जाते हैं। पहलेपहल उनका वेतन वार्षिक ४८०० मार्क से प्रारम्भ होता है, और वह प्रति चार वर्षों में ४०० मार्क के हिसाब मे बढता हुआ ७२०० मार्क तक बढ सकता है। जो बहुत बडा प्रतिभाशाली और दिगन्त कीर्ति प्राप्त मनुष्य हुआ

तो उसका वार्षिक वेतन ६२०० मार्क तक बढाने का अधिक
विद्या मन्त्री के हाथ में है। इसके ऊपर के लिए फिर रा
की आज्ञा लेनी पडती है। इसके अतिरिक्त घर भाडे के न
१३०० मार्क सालीना जुदे ही मिलते हैं। ये प्रोफ
जन्म भर पढाने-लिखाने के काम में जुते हुए से रहते
सुप्रसिद्ध तत्ववेत्ता और मानस शास्त्र के अद्वितीय विः
प्रो० वुण्ट की उम्र ८० वर्ष के ऊपर हो चुकी है, परन्तु
इस महायुद्ध के आरम्भ होने तक बराबर पढाते रहते
वे कहते हैं कि 'यदि मैं आज काम करना छोड़ दूँ, तो व
ही तडाक से मर जाऊँ' यह बात है भी वास्तव में सत
इन प्रोफसरों को 'उत्तम शिक्षक' की अपेक्षा 'उत्तम अन्वेष
कहलाना ही अधिक भूषण मालूम देता है, और प्रोफेस
की नियुक्ति के समय विश्वविद्यालय का भी यही ल
रहता है।

प्रोफेसरों की फ़ीस के विषय में यह नियम है कि य
फीस की रकम तीन हजार मार्क तक होगी, तो यह उ
को मिलेगी। जब तीन हज़ार से कुछ ऊपर तादाद होगी
प्रति सैकडा कुछ न कुछ सरकार को देना पडता है।
अति प्रख्यात प्रोफेसर हैं, उनको कभी कभी छ सौ
विद्यार्थी मिल जाते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी से सेमेस्टर को
मार्क (एक सप्ताह के छ व्याख्यानों का शुल्क) फीस के मि
हैं। यदि इस हिसाब से देखा जाय तो केवल दो टर्मस
ही २४००० मार्क की प्राप्ति हो जाती है। परन्तु यह
कृत्यता तभी प्राप्त होती है, जब उनको दस-बारह या क
कभी बीस-बीस वर्ष तक लोहे के चने चबाने पडते हैं। उ
भी इतिहास, तत्वज्ञान और इग्लिश भाषा के प्रोफ़ेसरों

ऐसा सुयोग अधिकतर मिलता रहता है। चीनी, पाली, अवेस्ता आदि भाषाओं के प्रोफेसरों का आय पाँच पचास मार्क से ऊपर नहीं होता। हरएक विद्यार्थी से परीक्षा शुल्क २४० से ३५० मार्कस् तक प्राप्त होता है और यह रकम तीन प्रोफ़ेसरों के बीच बाँट दी जाती है। डिप्लोमा छपाई का व्यय जिसका उससे लिया जाता है और यह व्यय शुल्क में शुमार नहीं किया जाता।

उपर्युक्त सब प्रोफेसर 'एकाडेमी डर विजेनशाफ्टेन्' के सभासद भी होते हैं, और उसकी विद्यमानता में इनका लेखन-व्यवसाय अखण्डरूप से जारी रहता है। ये प्रोफेसरगण अपने अपने विषयों पर खोज के साथ निबन्ध लिखते हैं और उन निबन्धों के प्रकाशनार्थं कई मासिक त्रमासिक पत्रिकाओं का सम्पादन भी करते हैं। इन पत्रिकाओं के प्रकाशन का कार्य्य किसी नवयुवक प्रोफेसर या प्रिव्हाट डोत्सन्ट के सुपुर्द रहता है। केवल यही एक कार्य्य है, जो कभी कभी उन्हें निजका द्रव्य व्यय करके भी करना पड़ता है। किन्तु यह कार्य्य इस-लिए उत्साहपूर्वक चलता है कि उसके द्वारा ज्ञान प्रचार तथा नूतन आविष्कार होते हैं।

इन प्रोफेसरों को अवेतनिक रूप से तथा सरकारी नौकर की हैसियत से एक और कार्य्य करना पड़ता है। वह यह है कि उन्हें 'स्टाट्स एकजामेन्' (अं० डिपार्टमेंटल एक्ज़ामिनेशन) का कार्य्य करना होता है। केवल यह न समझ लिया जाय कि 'डाक्टर' का डिप्लोमा मिल जाने से ही किसी व्यक्ति को सब स्थानों में नौकरी मिल सकती है। हाँ, विश्व-विद्यालय की अध्यापकी के लिए यह पर्याप्त है। इस उपाधि

का सबसे ज्यादह महत्त्व इसीलिए समझा जाता है कि वह विश्वविद्यालय की सब से उच्च उपाधि है। किन्तु अन्य प्रकार की नौकरियों के लिए तथा सरकारी कामों के लिए अलग अलग डिपार्टमेन्टल परीक्षाएँ देनी होती हैं। मध्यमा शिक्षा देनेवाले शिक्षकों के लिए भी वह आवश्यक है। इन परीक्षाओं के लिए विद्यामन्त्री की ओर से एक परीक्षक मण्डल नियत कर दिया जाता है। इस मण्डल में भिन्न भिन्न विषयों के प्रोफेसर तथा एक माध्यमिक पाठशालाओं के डाइरेक्टर का समावेश रहता है। इस मण्डल का कार्य वर्ष भर निरन्तर चला करता है।

इन तीन प्रकार के प्रोफेसरों के सिवा उनकी मदद के लिये 'लेक्टोर' अर्थात् व्याख्याता तथा, सहायक भी रहते हैं। इन दोनों को विश्वविद्यालय तथा इन्स्टिट्यूट की ओर से कुछ वेतन मिलता है। व्याख्याताओं की जगहें, विदेशी भाषाओं की परीक्षा के लिए, उन उन देशोंके मनुष्यों द्वारा भरी जाती हैं। वे सब मिलकर उस भाषा के मुख्य जर्मन प्रोफेसर की सहायता करते हैं। सहायक की जगह जर्मनी निवासी तथा अन्य विदेशियों की भी नियुक्ति हो सकती है। इन का कार्य यह रहता है कि वे हाल के प्रविष्ट हुए नये विद्यार्थियों के लिए सुबोध व्याख्यानों का प्रबन्ध करें।

अपने दैनिक कार्यों से फुर्सत पाने पर तथा विश्वविद्यालय के समय (विश्वविद्यालयों में सुबह ८ बजे से शाम को ७ बजे तक अनेक विषयों पर व्याख्यान होते रहते हैं) के अतिरिक्त कुछ प्रोफेसर रात्रिका एक घण्टा बड़े प्रेमसे अपने देशवासियों के हितार्थ व्यय करते हैं। इस एक घण्टे

में वे अपने अपने विषयों पर व्याख्यान देते हैं और उन व्याख्यानों से सर्वसाधारण जनता लाभ उठाती है।

उपर्युक्त पंक्तियों पर से हमारे विज्ञ पाठकगण समझ गये होंगे कि जर्मनी के विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर बनने का कार्य कितना कठिन है। वहाँ पर यह पद बड़े सम्मान का समझा जाता है। जर्मनी में विद्वत्ता का कितना अधिक मान किया जाता है यह बात एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जायगी। सुप्रसिद्ध जर्मन-भाषा विशारद प्रोफेसर 'एरिश स्मिट' बर्लिन विश्वविद्यालय में जर्मन भाषा के प्रोफसर थे। जब सन् १६१३ में उनका अकस्मात् देहान्त हो गया, तब उनकी रथी के साथ श्मशान-यात्रा के लिए राज्य के बड़े बड़े पदाधिकारी तथा स्वयं जर्मनी के सम्राट् भी गये थे। इसके सिवा जब कोई उत्सव होते हैं या दरबारी भोजन बनता है, तब विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों को बड़ा उच्च स्थान दिया जाता है।

ये अध्यापकगण प्रत्यक्ष सरस्वती पुत्र होते हैं। इनको विश्वविद्यालय की पढ़ाई के लिए छः घण्टे, और व्याख्या के लिये डेढ़ घण्टे, ऐसे कुल मिलाकर साढ़े सात घण्टे प्रति सप्ताह काम रहता है। शेष समय में वे अपने अपने बरपर सर्वदा संशोधन-कार्य में निमग्न रहते हैं। ये प्रोफेसर नाटक, मिहमानी तथा पार्टियों में बहुत कम सम्मिलित होते हैं। ये प्रति सप्ताह एक घण्टा लोगों से भेंट करने के लिए नियत कर देते हैं। इसका उद्देश यही है कि उनसे मिलने की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों की इच्छा भी पूर्ण हो जाय, तथा उनके कार्य में किसी तरह का विघ्न भी उपस्थित न हो सके। ये अध्यापकगण विद्यार्थियों से बड़े खुले मनसे वार्तालाप करते हैं और उनको हर प्रकार से सहायता करने के लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं।

भाग पांचवां

पहला अध्याय

व्यावहारिक-शिक्षा।

गत शताब्दि में जितने भी नूतन आविष्कार और भौति शास्त्रों की प्रगति हुई है, उन सब ने यूरोपियन लोगों जीवन को एक निराले ही साँचे में ढाल दिया है। मन्द श्रो कष्टसाध्य मनुष्य बल शनै शनै क्षीण होता गया और उसक जगह पर सुलभ और शीघ्र काम करनेवाला यन्त्रबल स्थापि हुआ। अतएव पुराने धन्धे नष्टप्राय होकर नयो का अस्तित्व प्रादुर्भूत होने लगा। पहिले केवल हस्तकौशल पर ही अव लम्बित रहना पडता था, परन्तु अब वह कुछ पीछे पड गय और उसके स्थान पर यन्त्र चलाने की शक्ति का होना ए अनिवार्य्य बात हो गई। अब श्रम-विभाग का तत्व स्वीका किये बिना किसी तरहसे निर्वाह नहीं हो सकता। जीवन कलह पहले सुलभ था, परन्तु अब वह अधिक कठिन हो गय है। जो उद्योग-धन्धे छोटे परिमाण पर चलते थे और किस समय वे पूर्ण उन्नतावस्था पर पहुँच चुके थे, वे शनै शनै अस हो गये और उनकी जगह पर बडे परिमाण पर काम चला बिना चल नहीं सकता है। जहाज, रेल, तार आदि से जह व्यापार और नित्य व्यवहार सुलभ हो गया, वहाँ उसके 'स्पर्द्धा' का तत्त्व मिल जाने से जो अधिक होशियार अपने धन्धे का पूर्ण जानकार है, वही सब से आगे बढ़ है। पहले केवल साधारण संस्कृति प्राप्त करा से ही काम चल सकता था, परन्तु अब वैसा नहीं हो

अतएव भौतिकशास्त्रों के आविष्कारों द्वारा पाश्चात्य देशों के रहन-सहन में जिन २ बातों की वृद्धि हुई है, अथवा पहले के उद्योग-धन्धों में जिन जिन सुधारों की सृष्टि हुई है, उन उन सुधारों का पहले पूर्ण ज्ञान सम्पादन करना उस मनुष्य को आवश्यक प्रतीत होने लगा, जो कि धन्धों में प्रविष्ट होना चाहता है। बस, पाश्चात्य देशों में व्यावहारिक शिक्षा का मुख्य उत्पादक कारण यही है।

हम कहीं ऊपर कह आये हैं कि अठारहवीं शताब्दि के अन्त में लोगों की यह पुकार हुई थी कि 'रेआलिएन' अर्थात् नित्य की उपयोगी बातों का शिक्षा में समावेश होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि ऐसा न हुआ तो शिक्षा और व्यवहार में फूट पड़कर हमारी सब शिक्षा निकम्मी हो जायगी। ब्हीटर्ट आदि देश भक्तों ने इसके लिए किस २ प्रकार के प्रयत्न किये थे, सो सब यथास्थान ऊपर कह आये हैं।

हम पहले प्राथमिक शिक्षा के विभाग में यह कह आये हैं कि' फोर्ट बिल्डुंग्जशूलेन' (कन्टिन्यूएशन स्कूल्स) पाठशालाएँ व्यवहारिक शिक्षा की प्राथमिक पाठशालाएँ हैं, सो वास्तव में वे ऐसी ही हैं। निर्धन और कंगाल लोगों के लड़कों को आठ वर्ष तक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर लेने के उपरान्त कुछ न कुछ पेट के लिए धन्धा करना ही पड़ता है। पहले मध्य युग के जमाने में इसके लिए कोई विशेष तैयारी न करनी पड़ती थी, परन्तु आजकल के जमाने में यह बात न रही। अतएव ऐसे लड़कों को कहीं न कहीं काम सीखने के लिए रहना पड़ता है। वर्तमान में कुछ थोड़े द्रव्य पर सन्तोष आगे के लिए अच्छा प्रबन्ध कर लेते हैं। इसी समय

व्यवहारोपयोगी शिक्षा दी जाती है। इसका विशेष वर्णन हम प्रारम्भिक शिक्षा के अन्त में कर आये हैं। अच्छा, फिर यह बात भी नहीं है कि इस शिक्षा में अधिक समय लगता हो तथा वह कुछ कष्टसाध्य हो, नहीं, इस शिक्षा में प्रति सप्ताह केवल ४-५ घंटे व्यय होते हैं और वह भी अपने धन्धे को सँभाल कर सुभीते के वक्त में। अतएव जिस प्रकार मजदूर और कृषक लोग पहले प्राथमिक शिक्षा के विषय में तकरार करते थे, वैसी तकरार इसके लिए करने का कोई कारण नहीं रहा। इसके सिवा उनको इस बात का पूर्ण ज्ञान हो चुका है कि जिस धन्धे में हमारा लड़का प्रविष्ट हुआ है या उस के प्रविष्ट होने की इच्छा है, उसी धन्धे का पूर्ण ज्ञान हासिल करने से वह अधिक परिचित और कार्य कुशल हो सकेगा और इसीलिए वह अधिक वेतन प्राप्त कर सकेगा। अतएव इसीलिए ऐसे लोगों की ओर से इस शिक्षा में कोई विरोध न हुआ, बल्कि उनकी सहानुभूति ही प्राप्त हुई। फिर धन्धेवाले और कारखानेवाले भी ऐसा कब चाहेंगे कि हमारे आश्रित लोग अधिक कार्य्यकुशल न हों? अर्थात् दोनो ही ओर से व्यावहारिक शिक्षा को अनिवार्य्य करने में एकमत था, और इसीलिए स्थान-भेद के अनुसार व्यावहारिक शिक्षा दो वर्ष से लेकर चार वर्ष तक सरकारी कानून के अनुसार अनिवार्य्य कर दी गई। उस समय इस अनिवार्य्यता के विरुद्ध किसी ने भी चू तक नहीं की। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सब प्रभाव प्रथम की अनिवार्य्य शिक्षा का था। यह तो हो चुकी कृषक, मजदूर आदि निचली श्रेणी वाले समुदाय की बात, परन्तु इसकी अपेक्षा ऊँची श्रेणी में किंचित् बड़ा पर साधारणतया एक गरीब समुदाय और रह जाता है। यूरोप

में जो वर्ग 'मध्यम वर्ग' के नाम से पुकारा जाता है उस के दो विभाग कर देने पर जो निचला वर्ग होता है, उसी के सम्बन्ध में हमें यहाँ कुछ कहना है। इन लोगों की यह इच्छा रहती है कि हमारे बालक प्रारम्भिक शिक्षा से कुछ अधिक पढ लें, और ऐसा करने में वे कुछ समर्थ भी होते हैं। इन लोगो की यह भी इच्छा रहती है कि हमारे बालक उस उच्च शिक्षा की संस्कृति को प्राप्त करें, जिस के प्राप्त कर लेने पर मनुष्य (जेंटलमन) सभ्य गिना जाता है। ऐसी शिक्षा प्राप्त करा देने के लिए उनके पास कुछ थोड़ा-बहुत द्रव्य भी रहता है। हम ऊपर कह आये हैं कि ऐसे लोगो के लिए केवल छ वर्ष की शिक्षा देने-वाली (१० वें वर्ष से १६ वें तक) 'प्रोगिम्नासियन रेआल-प्रोगिम्नासियन तथा रेआलशूलेन' आदि कई पाठशालाएँ जर्मनी में खुली हुई हैं। इन पाठशालाओं की शिक्षा प्राप्त कर लेनेके उपरान्त विद्यार्थी अपने इच्छानुकूल चाहे जिस धन्धे की व्यावहारिक पाठशाला में प्रविष्ट हो सकता है। इन पाठ-शालाओं को यदि यह कहा जाय कि वे व्यावहारिक शिक्षा की 'माध्यमिक' पाठशालाएँ हैं तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

इन व्यावहारिक पाठशालाओं का साधारण स्वरूप बतलाना बडा कठिन है। क्योंकि जर्मनी में जितने उद्योगधन्धे हैं तथा जितने व्यापार है, प्राय उन सब के लिए जुदी जुदी पाठशालाएँ खुली हुई हैं। उनके लिए टेकनिकल् स्कूल्स और ड्राइङ्ग, पेंटिङ्ग, फोटोग्राफी सीखनेवालो के लिए आर्ट-स्कूल्स, सुनारी, लुहारी, दरज़ीगिरी, चमार का काम, कसेरे का काम बढ़ारी, शराब बनाना, खदानो में की धातु का काम, केमि-स्टस, ड्रगिस्ट्स, अपाथेकरीज, इलेक्ट्रिकल काम करनेवाले

इत्यादि के लिए 'गेवेर्बशूलेन' तथा विल्डिङ्ग, सर्वे आदि काम करनेवालो के लिए 'स्कूलस् आफ आर्किटेक्चर' इत्यादि सैंकडों किस्म की 'माध्यमिक' पाठशालाएँ जर्मनी में खुली हुई हैं। इनमें से कुछ को 'इण्डस्ट्रीशूलेन' कहते हैं। इस के अतिरिक्त व्यापारमें प्रवेश करनेवाले बनिये, उद्यमी, दलाल, मुनीम, लेखक आदिकों के लिए व्यापारिक पाठशालाएँ खुली हुई हैं। इनमें से कुछ तो सरकारी और कुछ लोगों की ओर से चलाई जाती हैं। व्यापारिक पाठशालाएँ बहुधा म्यूनिसिपल या खानगी तरीके से चलाई जाती हैं।

इन पाठशालाओं में विशेष २ विशेषज्ञों द्वारा तात्त्विक और व्यावहारिक शिक्षा दिलाई जाती है। अतएव जो विद्यार्थी इनमें से निकलते हैं वे बहुधा अपने अपने धन्धे के पूर्ण जानकार होकर निकलते हैं, और इसीलिए वे वर्तमान की व्यापारिक स्पर्द्धा में टिके रहने के योग्य और समर्थ होते हैं। यहाँ जो शिक्षा दी जाती है, उस के तीन विभाग हैं, प्रथम सर्व-साधारण, दूसरा उस धन्धे का तात्त्विक, और तीसरा धन्धे के विषय में प्रत्यक्ष, व्यावहारिक ज्ञान। सर्व-साधारण विभाग में फिर से जर्मन भाषा और इतिहास पढ़ाया जाता है, परन्तु उसका विशेष लक्ष्य पत्र-व्यवहार, हस्ताक्षर, लघु-लेखनकला और टाइप-राइटिङ्ग पर रहता है। दूसरे विभाग में धन्धो का इतिहास, उसका साधारण परिचय, तत्सम्बन्धी सख्या और उसके सुधार के उपायो का समावेश रहता है। तीसरे विभाग में उस धन्धे की प्रत्यक्ष-शिक्षा दी जाती है। अतएव जिस व्यक्ति ने यह सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर ली, वह अपने धन्धे को तो होशियारी तथा सुप्रबन्धता से कर ही लेता

है, परन्तु वह अपने धन्धे के अङ्गोपाङ्गों से भी परिचित रहता है। इतना ही नहीं, उसको यह शिक्षा भी मिलती है कि उस धन्धे के विषय में परदेशों में कैसी कैसी उन्नति हो चुकी है और यदि हम उन उन्नत धन्धेवालों के साथ स्पर्द्धा करने लगें, तो वह अकेला और उस धन्धेवाले मण्डल मिलकर किन किन उपायों को प्रयुक्त कर सकते हैं और क्या क्या करना चाहिए। ये बातें इन पाठशालाओं में मुख्यता के साथ पढ़ाई जाती हैं। अधिकांश धन्धों के लिए ड्राइङ्ग आवश्यक रहता है, व्यापारिक शिक्षा में लघु यन्त्रलेखनकला, जमा खर्च, और विशेष कर फ्रेञ्च, इङ्गलिश आदि विदेशीय भाषाएँ आवश्यक रहती हैं।

इस विषय में एक उदाहरण दे देना पर्याप्त होगा कि एक ही नगर में अनेक धन्धों की पाठशालाएँ किस बहुलता के साथ खुली हुई हैं। लाइपजिक शहर में एक बड़ी भारी 'कोनिगलिश गेवेर्बशूल' अर्थात् सरकारी उद्योग धन्धों की पाठशाला है। इसमें एञ्जिन ड्राइव्हर, फिटर, सुतार, चित्रकार, धातु के काम करनेवाले और लकड़ी पर चित्र निकालनेवाले इत्यादि अनेक हुनरों के लोग तैयार होते हैं। इसके सिवा इसी एक नगर में अन्य ३० पाठशालाएँ ऐसी खुली हुई हैं कि जिन में व्यापारिक शिक्षा, मुद्रणकला, पुस्तकें बाँधने नकी विक्री करने और अन्य प्रकार के विषयों की शिक्षा दी जाती है। इस पर से हमारे विज्ञ पाठक सुलभतया अनुमान कर सकते हैं कि जर्मनी में माध्यमिक व्यावहारिक शिक्षा की भी कैसी उन्नति हुई है।

दूसरा अध्याय।

उच्च व्यावहारिक-शिक्षा।

इस शिक्षा के भी दो विभाग किये गये हैं, और वे यथार्थ में स्वाभाविक हैं। एक तो नाना प्रकार के धन्धों विषयक, और दूसरा व्यापारिक-पद्धति का। तदनुसार जर्मनी में दो प्रकार के कालेज खुले हुए हैं। एक तो धन्धों-विषयक, अर्थात् 'टेक्निकल कालेज' और दूसरे व्यापारिक शिक्षा के, अर्थात् 'कमर्शियल कालेजेज्'।

धन्धों-विषयक कालेजों का स्थापन करना कितना बड़ा विकट काम है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। क्योंकि इस विभाग में इतने अधिक धन्धों का समावेश होता है कि उन सब की शिक्षा का प्रबन्ध करना, उनमें लगनेवाले सम्पूर्ण साधनों को एकत्रित करना, और वैज्ञानिक प्रयोगों का सामान इकट्ठा करना इत्यादि बातें को एक समर्थ राष्ट्र ही कर सकता है। ऐसे कालेजों को स्थापन करने में निजी प्रयत्न चाहे जितने जोर से क्यों न हो, परन्तु उनमें सफलता प्राप्त करना कठिन ही है। यदि इस काम में सरकारी सहायता न मिले तो अनेक बातों का अधूरा रह जाना अधिक सम्भव है।

यदि यह कहा जाय कि जर्मनी में उच्च उद्योग-शिक्षा का प्रादुर्भाव अर्वाचीन है, तो इस में कोई आपत्ति न होगी, क्योंकि इस शिक्षा का आन्दोलनही गत शताब्दि के उत्तरार्ध में हुआ था। इसका कारण यही है कि जिन वैज्ञानिक आविष्कारों और उससे उत्पन्न हुए व्यावहारिक सुधारों पर इस शिक्षा का

अस्तित्व अवलम्बित है, उसका स्वरूप अठारहवीं शताब्दि में भली भांति पूर्ण नहीं हुआ था। इसके सिवा इन कालेजों की वृद्धि उद्योग धन्धों की उन्नति पर अवलम्बित होने के कारण ज्यों २ वे उत्पन्न होकर बढते गये, त्यों २ इनकी भी आवश्यकता बढती गई। ऐसे कालेजों की उन्नति युनिवर्सिटी की छत्र-छाया में रहकर कदापि नहीं हो सकती थी, क्योंकि जिस स्थान पर जिस धन्धे का अधिक प्राबल्य होगा, उस स्थान पर उसकी शिक्षा का होना अनिवार्य्य था, और इसीलिए जर्मनी में व्यावहारिक शिक्षाके जो आठ दस कालेज हैं, वे बहुधा उन शहरों में नहीं हैं जहाँ पर कि युनिवर्सिटियाँ स्थापित हैं। अपवाद के लिए केवल दो कालेज ऐसे हैं—एक तो बर्लिन में और दूसरा म्यूनिच में।

इन कालेजों में छ प्रकार की शिक्षा दीजाती है-अर्थात् उन की छ शाखाएँ हैं। १ सर्व-साधारण, २ इञ्जिनियरिङ्ग, ३ आर्किटेक्चर, ४ मेकनिकल इञ्जिनियरिङ्ग, ५ केमिकल और ६ कृषि-विद्या। इन भिन्न भिन्न शाखाओं में तीन से चार वर्षों तक शिक्षा दी जाती है।

(१) सर्व-साधारण—यह शाखा प्राय अध्यापकों के लिए है। नौ वर्ष की शिक्षा देनेवाली तीनों प्रकार की (गिमनासिउम्, रेआल-गिमनासिउम्, ओवर रेआलशूल) पाठशालाओं में जो जन आधुनिक शास्त्रों तथा कला आदि के शिक्षक का काम करना चाहते हैं, उनको टेक्निकल कालेज की इस शाखा में चार वर्ष तक शिक्षा प्राप्त कर परीक्षा देनी होती है। गणित की उच्च शिक्षा और यन्त्र शास्त्र (Mechanics), रसायन शास्त्र, सृष्टि शास्त्र, जर्मन भाषा, इतिहास-भूगोल, नई भाषाएँ,

ड्राइङ्ग, और माडेलिङ्ग, तथा व्यापारिक शिक्षा, इतनी उपशाखाएं इस पहली शाखा के अन्तर्गत समाविष्ट होती हैं। इनमें से किसी भी उपशाखा में अपनी शक्ति अनुसार १ से ४ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त कर जो व्यक्ति प्रमाण पत्र हासिल कर लेता है, उसको उस विषय की शिक्षा देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसी शाखा में आबकारी और कस्टम की उच्च कार्यकारिणी शिक्षा भी दी जाती है। प्रति सप्ताह के लेक्चर और प्रयोग द्वारा शिक्षा देने के कुल मिलाकर, २१ से २७ घण्टे होते है।

(२) इञ्जिनियरिंग—इस शाखा में ३ से ४ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करनी होती है। योग्य विषय चार वर्षों में विभक्त कर दिये गये हैं और दोनों प्रकार की शिक्षा (व्याख्यान और प्रयोग द्वारा) प्रति सप्ताह ३० से लगाकर ३४ घण्टों तक दी जाती है। प्रयोगात्मक शिक्षा के लिए प्रतिवर्ष अधिकाधिक घण्टे बढ़ते जाते हैं, और अन्तिम वर्ष उनकी संख्या १७ तक पहुँच जाती है। इस इञ्जिनियरिङ्ग-शिक्षा में अनेक विषय रहते हैं। अतएव साधारण विषय को छोड़ कर शेष बदलते जाते हैं।

(३) आर्किटेक्टस—(इमारतों का प्लेन करके उन्हें बनानेवाले)–इसमें तीन वर्ष का शिक्षा क्रम है। सप्ताह के घण्टो की संख्या ऊपर लिखे अनुसार ही है। अपने अपने विषयो में उत्तीर्ण होने पर जिस प्रकार इञ्जिनियरों को डिप्लोमा मिलता है, तदनुसार इनको भी दिया जाता है। इनकी परीक्षा के विषय मर्य्यादित रहते हैं, जिसमें हायर मेथेमेटिक्स, ग्रेफिकल जिओमेट्री, टेक्निकल मेकेनिक्स, फिजिक्स और केमिस्ट्री, कन्स्ट्रक्शन, प्राचीनवस्तुकला का परिचय, अलङ्कारिक-चित्रकला

ये सब आवश्यक विषय हैं। विद्यार्थी अन्य ऐच्छिक विषय भी ले सकता है।

(८) मेकेनिकल इंजिनियरिंग—इसमें भी चार वर्षका शिक्षा क्रम है। इसमें इतने विषय रहते हैं—गणित, भूमिति, फिजिक्स। इनके अतिरिक्त यान्त्रिक-रचना, यन्त्र के प्रत्येक अवयव का उपयोग, तथा टूटे फूटे को जोड़ना तथा बनाना और अन्य उपयोगी विषय भी रहते हैं। प्रति सप्ताह के घण्टों की संख्या इसमें भी अन्य शाखाओं के समान ३० से ३४ तक रहती है। इसके सिवा टेक्सटाइल, वाटर-पावर प्रोसेस, इंजिन बनाना, रेलवे बनाना, इलेक्ट्रो टेकनिक् आदि विषय ऐच्छिक रहते हैं। इस शाखा में इलेक्ट्रो इंजिनियरिङ्ग की उपशाखा रहती है, जिसमें उपर्युक्त विषय सामान्य रीति से और इलेक्ट्रो टेकनालजी के समान विषय विशेष रूप से सीखने होते हैं।

(९) केमिकल—यह शाखा रासायनिकों की है। इसमें आरगेनिक तथा इन आरगेनिक, अनालिटिकल केमिस्ट्री, मिनरालाजी, क्रिस्टालोग्राफी, बाटनी आदि विषय रहते हैं। शिक्षा के घण्टे ऊपर लिखे अनुसार हैं। शिक्षा क्रम चार वर्ष का है।

(६) कृषि विद्या—इस शाखा में फिजिक्स, केमिस्ट्री और एकानमी आदि विषय तो सामान्य हैं, और प्राणि शास्त्र, वनस्पति शास्त्र आदि की शिक्षा साङ्गोपाङ्ग है। यह तो हो गई प्रथम वर्ष की बात, परन्तु सच्ची कृषि-विद्या का आरम्भ दूसरे वर्ष से होता है। पहले भूस्तर-विद्या, पश्चात् भूमिका परिचय, क्लिमेटालोजी, वनस्पति का पोषण, अनाज बोना और पौधों का लगाना, उनकी पर्वरिश करना इत्यादि विषय दूसरे वर्ष सिखलाये जाते हैं।

इस के सिवा वनस्पति के रोग और उनका इलाज, पशुओं के रोग, कृषि-सम्बन्धी औजारों का परिचय भी इसी वर्ष सिखलाया जाता है। तीसरे वर्ष वृक्ष और पशुओं की पैदायश और उनका आरोग्य, कृषकों के आवश्यकतानुसार गणित, जमा-खर्च, और चौथे वर्ष अग्रिकल्चरल टेकनालोजी इत्यादि विषय सिखलाये जाते हैं। यह भी प्रबन्ध किया गया है कि विद्यार्थी सहकारी तत्त्वपर चलनेवाली सभाओं का ज्ञान हासिल कर सकें। प्रति सप्ताह शिक्षा २० से २५ घण्टों तक दी जाती है।

इस प्रकार से इच्छित शाखा की शिक्षा समाप्त होनेके उपरान्त परीक्षा ली जाती है और उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र (डिप्लोमा) दिया जाता है। ऐसे विद्यार्थी अपने नाम के पीछे 'डिप्लोम् इञ्जिनियर' की उपाधि भी लगा सकते हैं। इस अन्तिम परीक्षा के पूर्व हरएक टर्म के अन्त में 'सेमेस्ट्राल प्रुफुगेन' नाम की परीक्षा ली जाती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है। जिनको छात्रवृत्ति प्राप्त करनी है, या जिन को ऐसा प्रमाणपत्र चाहिए कि मैंने अमुक अमुक और इतने व्याख्यान सुने हैं, उसको इस परीक्षा में बैठना आवश्यक रहता है। शिक्षकों की परीक्षा अन्त में होती है, और उस में उत्तीर्ण होने पर 'डाक्टर' की उपाधि से विभूषित किये जाते हैं। इसके सिवा एक और परीक्षा होती है और यह केवल उन्हीं के लिए है जो आबकारी और कस्टम के महकमे में जाना चाहते हैं।

इस शिक्षा को प्राप्त करके जो लोग उपर्युक्त परीक्षाओं में बैठना चाहते हैं। उनके लिए टेकनिकल कालेज

(जो कि नियमानुसार विद्यार्थी तो नहीं हैं परन्तु थोडी बहुत फीस देकर व्याख्यान सुन लिया करते हैं) परीक्षा में बैठने का अधिकार नहीं है। विद्यार्थी बनने के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है —

(१) अच्छे चाल चलन का प्रमाण पत्र।

(२) पूर्व-शिक्षा का योग्य प्रमाण पत्र। नौ वर्ष तक शिक्षा देनेवाली गिम्नासिउम, ओवर-गिम्नासिउम् और ओवर-रेआ-लशूल का, अथवा किसी टेक्निकल स्कूल की सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त करने का प्रमाण पत्र हो तभी शिक्षार्थी टेक्निकल कालेज में भरती किया जाता है। विदेशियों को अपनी शिक्षा का ऐसा प्रमाण पत्र पेश करना होता है कि उनकी शिक्षा उपर्युक्त शिक्षा की योग्यता के बराबर हो चुकी है, अर्थात् वह उसके देशकी युनिवर्सिटी-प्रवेश तक की शिक्षा प्राप्त कर चुका है, तथा वह अमुक राष्ट्र का रहने वाला है।

(३) यदि योग्य उम्र (२१ वर्ष से ऊपर) न हुई तो पिताकी या पालक की अनुमति का प्रमाण पत्र होना।

इस प्रकार कालेज में प्रमाण पत्र पेश करके यह विश्वास करा देना होता है कि ये ठीक ठीक हैं, पश्चात् रेक्टर से हस्तान्दोलन होता है। और 'मेट्रिकेल' अर्थात् विद्यार्थी होनेका अधिकार पत्र मिल जाता है अधिकार पत्र के साथ एक कार्ड भी मिलता है, जिसमें विद्यार्थी का नाम और गॉत्र लिखा रहता है। इस कार्ड को 'लेजिटिमात्स्योनस्' कहते हैं। यदि यह पास हुआ, तो फिर वह कालेज के विद्यार्थियों के कुल अधिकारों को भोग सकता है। यह सब विधियां विश्वविद्यालय के समानही होती हैं। कालेज अथवा विश्वविद्यालय खुलने से एक महीने के भीतर ही इन सब विधियों की व्यवस्था कर लेनी पडती है।

तमाम टेक्निकल कालेजों का यह एक नियम ही है कि उनमें विदेशी विद्यार्थी उतनेही लिये जाते हैं, जितनों के विषय में पहले निश्चय हो चुका हो। हरएक सेमेस्टर के अन्तमें कालेज के बोर्ड पर नोटिस लगा दिया जाता है कि इस समय कौन से देश के कितने विद्यार्थियों का नाम रजिस्टर में है, और अब आगे के सेमेस्टर में कितने विद्यार्थी लिये जा सकते हैं। यदि किसी सेमेस्टर में विदेशी विद्यार्थियों की नियमित संख्या भर चुकी है, और अन्तमें उसमें से कोई कम नहीं हुआ, तो फिर आगे के सेमेस्टर में नये विद्यार्थी भरती नहीं किये जाते। सुदैव से विश्वविद्यालयों में यह नियम नहीं है।

विद्यार्थियों के अधिकार।

जब विद्यार्थी हरएक टर्म के लिए १ से लगाकर ३ मार्क तक फीस भर देता है तो फिर उसको रोगी अवस्था में उत्तम वैद्य की मुफ्त दवा, और कठिन रोगों में सरकारी दवाखाने में मुफ्त जगह, और सुश्रूषा करवाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। ये नियम विश्वविद्यालय तथा टेक्निकल कालेज के विद्यार्थियों के लिए समानही हैं। इसके सिवा एक सेमेस्टर पर आधा मार्क (छ आने) भर देने से उस विद्यार्थी का बीमा हो जाता है, और यदि कुछ अपघात या मृत्यु बीच में ही, अर्थात् विद्यार्थी अवस्था में ही हो गई, तो उसको ५००० से लगाकर १०००० मार्क तक द्रव्य मिल सकता है। इसके सिवा नाटक के टिकटों का कोई आधे से भी कम दर देना होता है, और म्यूजियम आदि में एक बार

बहुत कम दाम देकर चाहे जब प्रवेश करने का सुभीता रहता है। इस प्रकार जर्मनी में उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के सुभीते और अधिकार प्राप्त हैं।

शुल्कादि व्यय।

कालेज का प्रवेश शुल्क २० मार्क, परदेशियों से ४० मार्क है। यदि विलम्ब हुआ तो क्रमश ३० से ६० मार्क तक देने पड़ते हैं। यह शुल्क बहुधा दो वर्ष का होता है। यदि पुन उसी कालेज में रहना हो तो क्रमश १० और २० मार्क देने होते हैं। इस के सिवा परदेशियों को हरएक सेमेस्टर में परदेशी होनेके कारण ५० मार्क अधिक शुल्क देना होता है, और जिन जिन प्रोफेसरों के व्याख्यान सुने जाते हैं, उनका शुल्क जुदा देना पड़ता है। प्राय सब व्याख्यानों और सेमिनारों, ड्राइङ्ग और गणित की युबगेन (कक्षाओं) को सप्ताह के प्रति घण्टे पीछे ४ मार्क के हिसाब से सेमेस्टर फीस देना होती है। उदाहरणार्थ, यदि सप्ताह में एक विषय के ४ व्याख्यान सुने, तो सम्पूर्ण सेमेस्टर की उस विषय की फीस १६ मार्क (१२ रुपये) होते हैं। केमिस्ट्री और अन्य विषयों के प्रयोगों में प्रति घण्टे ८ मार्क और जिन विषयों के प्रयोग सप्ताह भर में ४ घण्टों के ऊपर होंगे, उनके लिये सम्पूर्ण सेमेस्टर की फीस सब मिलाकर ७६ मार्क होती है। ग्यास वगैरह के लिए सप्ताह में एक घण्टे पीछे १ मार्क देना होता है।

परीक्षा की फ़ीस।

डिप्लोम परीक्षा के लिए जर्मन विद्यार्थियों से ४०, और अन्यों से ८० मार्क फीस के लिये जाते हैं। डाक्टर की उपाधि

परीक्षा के लिए विश्वविद्यालयों के समान २५० मार्क (१८ रुपये) देने होते हैं।

प्रबन्ध।

विद्यार्थियों का प्रवेश, उनकी शिक्षा और परीक्षा तथ कालेज के अन्य कामों को देखने के लिए एक सीनेट नाम की सभा है। इस सभा में केवल सात सभासद होते हैं। एक तो मुख्य रेक्टर, और छ शाखाओं के छ प्रतिनिधि। भिन्न २ कामों के करने के लिए यह सभा भिन्न २ कमेटियां बना देती है। इस सीनेट-सभा पर विद्या-विभाग के मंत्री का अधिकार रहता है। जिस मनुष्य के विषय में सब प्रोफेसर अनुकूल सम्मति दें, वह मनुष्य राजा की ओर से ३ वर्ष के लिए रेक्टर नियत कर दिया जाता है। हरएक अधिकारी के परिव र्तन के बाद पूर्व रेक्टर नये रेक्टर को प्रोरेक्टर की हैसियत से मदद करता है। हरएक शाखा के प्रोफेसर अपने अपने प्रतिनिधि सभा के लिये चुनाव करते हैं। यह सभा बहुत छोटी होने के कारण, सब काम शीघ्रता एवं अविदित रीति से होते रहते हैं।

संख्या।

इस प्रकार के अनेक टेक्निकल कालेज जर्मनी में हैं, और उन्हींमें का एक कालेज म्यूनिच् में है। उसमें अर्डिनरी और एक्सट्रा-अर्डिनरी, तथा लेक्चरर और डिमान्स्ट्रेटर्स आदि अध्यापकों की संख्या कुल मिलाकर ९३ है। ऐसा एक कालेज सेक्सनी के ड्रेसडेन में, और एक बाडेन प्रान्त में है। प्रशियामें ऐसे ५ कालेज हैं और १ बर्लिन में, २ हानोव्हरमें, ३ आरवेन

उन को व्यापारिक और सामान्य शिक्षा पूर्ण रूप से देना, माध्यमिक व्यापारिक शिक्षा की पाठशालाओं के लिए तात्त्विक तथा प्रयोग द्वारा शिक्षा देकर योग्य अध्यापक तैयार करना, इस कालेज का उद्देश है। इस उद्देश की पूर्ति के लिए विश्वविद्यालय, सरकार और हाएडेल्स-कामर (चेम्बर आफ कामर्स) ने अपनी ओर से एक प्रबन्धकारिणी समिति स्थापित की है।

सीनेट-सभा

यह सभा विद्या मन्त्री के अधीन है, इसके कुल मिला कर ११ सभासद होते हैं, एक सरकारी प्रतिनिधि, एक म्युनिसिपेलिटी का प्रतिनिधि, तीन हाएडेल्स कामर के सभासद, तीन विश्वविद्यालय की सीनेट-सभा से चुने हुए प्रोफ़ेसर, व्यापारिक कालेज के दो सभासद जो कि टेक्नीकल विषयों की शिक्षा देते हैं, एक डाइरेक्टर, ऐसे कुल मिलाकर ग्यारह सभासद होते हैं। इस सभा के सभापति और उप-सभापति का चुनाव दो दो वर्ष पीछे हुआ करता है। उनका काम यही रहता है कि वे कालेज की हर प्रकार से देख रेख रक्खें, परन्तु आन्तरिक प्रबन्ध का सब कार्य्य डाइरेक्टर के सुपुर्द रहता है। वही प्रोफेसरों की सहायता से पाठ्यप्रणाली और समय विभाग का नियमन करता है। कोष, पुस्तकालय प्रवेश परीक्षा आदि भिन्न भिन्न विभागों के लिए सीनेट की ओर से भिन्न भिन्न समितियों का सङ्गठन किया जाता है।

इन कालेजों में चार प्रकार के मनुष्य प्रवेश पा सकते हैं। एक तो वे, जिन्होंने नौ वर्ष की शिक्षा देनेवाली किसी भी पाठ-शाला में पूर्ण शिक्षा पाई हो, दूसरे वे विद्यार्थी, जिन्होंने

और होशियार होने लगते है, तब तक अन्य देश न मालूम हम से कितने आगे बढ जाते हैं। जबकि जर्मनी ने अपना यह ध्येय निश्चित कर लिया है कि वह संसार की व्यापारिक स्पर्द्धा में पडना चाहता है, इतना ही नहीं यथासम्भव उस में अग्र-स्थान प्राप्त करना चाहता है, तब प्रश्न केवल यही रह जाता है कि ऐसा होना किन २ मार्गों द्वारा होगा। वे मार्ग दो ही हैं। प्रथम तो यह कि देशी उद्योग-धन्धों को उत्तेजित करके उनकी उन्नति करना, तथा उनको परदेशी धन्धों से टक्कर मारने योग्य बना देना। इनके लिए जर्मनी ने क्या २ किया, सो सब बातें हम गत अध्याय में वर्णन कर चुके हैं। दूसरा मार्ग अपने विदेशी व्यापार को बढाना और उस की रीतियों में सुधार करना है। तथा सुधरी हुई रीतियों द्वारा व्यापार में अन्य देशों को हराकर उनका व्यापार अपने हाथ में कर लेना है। इसके लिए जर्मनी में व्यापारिक कालेजों की स्थापना हुई है। इस प्रकार के कालेज जर्मनी में गिनती के ही हैं, अर्थात् उनकी संख्या केवल चार पांच ही है।

ये सब कालेज स्थानभेद के अनुसार कुछ साधारण फेर-फार के सिवा प्राय एकही नमूने के बने हुए हैं। इन सब में जो शिक्षा दी जाती है, वह एकही उद्देश से, एकही प्रणाली से, और एकही परिणाम उत्पन्न करनेवाली होती है। अतएव यदि लाइप्झिक के सुप्रसिद्ध 'व्यापारिक कालेज' को नमूने के बतौर रखकर उसका विस्तारसहित हाल लिया जायगा तो वह बहुत ठीक होगा। उसका हाल निम्नलिखित है—

उद्देश।

जो होनहार नवयुवक व्यापार (व्यापार में बैंकिंग, इन्श्योरेंस आदि का भी समावेश होता है) में पडना चाहते हैं,

उन को व्यापारिक और सामान्य शिक्षा पूर्ण रूप से देना माध्यमिक व्यापारिक शिक्षा की पाठशालाओं के लिए तात्त्विक तथा प्रयोग द्वारा शिक्षा देकर योग्य अध्यापक तैयार करना, इस कालेज का उद्देश है। इस उद्देश की पूर्ति के लिए विश्वविद्यालय, सरकार और हाएडेल्स कामर (चेम्बर आफ कामर्स) ने अपनी ओर से एक प्रबन्धकारिणी समिति स्थापित की है।

सीनेट-सभा

यह सभा विद्या मन्त्री के अधीन है, इसके कुल मिला कर ११ सभासद होते हैं, एक सरकारी प्रतिनिधि, एक म्युनिसिपेलिटी का प्रतिनिधि तीन हाएडेल्स कामर के सभासद, तीन विश्वविद्यालय की सीनेट सभा से चुने हुए प्रोफेसर, व्यापारिक कालज के दो सभासद जो कि टेक्नीकल विषयों की शिक्षा देते है, एक डाइरेक्टर ऐसे कुल मिलाकर ग्यारह सभासद होते हैं। इस सभा के सभापति और उप सभापति का चुनाव दो दो वर्ष पीछे हुआ करता है। उनका काम यही रहता है कि वे कालेज की हर प्रकार से देख रेख रक्खें, परन्तु आन्तरिक प्रबन्ध का सब कार्य्य डाइरेक्टर के सुपुर्द रहता है। यही प्रोफेसरों की सहायता से पाठ्यप्रणाली और समय विभाग का नियमन करता है। कोष, पुस्तकालय, प्रवेश परीक्षा आदि भिन्न भिन्न विभागों के लिए सीनेट की ओर से भिन्न भिन्न समितियों का सङ्गठन किया जाता है।

इन कालेजों में चार प्रकार के मनुष्य प्रवेश पा सकते हैं। एक तो वे, जिन्होंने नौ वर्ष की शिक्षा देनेवाली किसी भी पाठशाला में पूर्ण शिक्षा पाई हो, दूसरे वे विद्यार्थी, जिन्होंने

माध्यमिक व्यापारिक पाठशाला की पूर्ण शिक्षा पाई हो (ऐसी माध्यमिक पाठशाला जिसकी सर्वोच्च श्रेणी नौ वर्ष की शिक्षा देनेवाली पाठशाला की सर्वोच्च श्रेणी के बराबर की हो), तीसरे वे शिक्षक, जिनकी शिक्षा लेरर सेमिनार में हुई है और उनके पास उसमें उतीर्ण होने का प्रमाण पत्र है, चौथे ऐसे व्यापारी, जिन्हो ने स्वय-सेवक सर्विस का एक वर्ष का अधिकार प्राप्त किया हो, और उन के पास ऐसा प्रमाण पत्र मौजूद हो कि उन्होंने तीन-चार वर्ष तक किसी व्यापारिक दूकान में रहकर उस धन्धे का अच्छा परिचय प्राप्त कर लिया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इन कालेजो में विदेशियो के लिए भी किसी प्रकार की रुकावट नहीं है। केवल मात्र उनकी पूर्वशिक्षा उपर्युक्त विधि के अनुकूल होनी चाहिए।

पूर्व शिक्षा, अच्छे चाल चलन का सर्टिफिकेट, और विदेशी होनेपर अपने देश की गवर्नमेंट का प्रमाण-पत्र आदि कालेज में पेश करने से 'माट्रिकेल' अर्थात् कालेज के विद्यार्थी होनेका सर्टिफिकेट मिल जाता है।

इसके लिए जर्मन विद्यार्थी से २० मार्क और परदेशी से १०० मार्क शुल्क के बतौर लिये जाते हैं। ऐसे माट्रिकेल प्राप्त विद्यार्थी विश्वविद्यालय की फीस देकर उसके व्याख्यान भी सुन सकते हैं और वहां के सेमिनारो में काम भी कर सकते हैं। जो प्रमाण पत्र आदि पेश नहीं कर सकते, वे यदि उनकी इच्छा हो तो ४ से १० मार्क तक देकर श्रावक (होरर) बन सकते हैं। उनपर सीनेट का अधिकार नहीं चल सकता। उसका अधिकार तो केवल माट्रिकेल प्राप्त विद्यार्थियो परही चलता है। यदि कुछ अनुचित कार्य्य

या अनियमितता हुई, तो सीनेट को अधिकार है कि यह अपराधी पर ५० मार्क तक दण्ड करे, अटक कर दे, निकाल देने की धमकी दे, और निकाल भी दे। यदि कोई स्वेच्छा से कालेज छोड़ना चाहे, या तीन वर्ष में स्वय, या कुछ अपराध करने पर सीनेट माट्रिकेल पत्र छीन ले, तो फिर कालेज के विद्यार्थी होने, अधिकार और उत्तर-दायित्व का अन्त हो जाता है। और विद्यार्थी को कालेज का माट्रिकेल, अन्य कागज पत्र और पुस्तकालय की पुस्तको का उपयोग करने का सर्टिफिकेट, वापस करना पड़ता है।

शिक्षा-क्रम।

इन कालेजों में जो विषय सिखलाये जाते हैं उनके अलग अलग विभाग कर दिये गये है। जैसे—

१—अर्थ शास्त्र–इस विभाग में पहले सर्व साधारण (तात्विक) अर्थ शास्त्र और उसका इतिहास, दूसरा खास या व्यावहारिक अर्थ शास्त्र, तीसरा फाइनेन्स, चौथा औद्योगिक इतिहास (विशेषकर व्योपार का), पाचवा सामाजिक राज-नीति (विशेषकर श्रमियो का प्रश्न), इतने उप विषयो का समा वेश होता है। इनमें से पहला विषय तो प्रत्येक विद्यार्थी को पहले टर्म में ही पढ़ना पडता है। दूसरा खास या व्यावहारिक अर्थ-शास्त्र व्यापारिक शिक्षा में बड़े महत्व का समझा जाता है। उसमें सिक्के, सहकारी सभा, व्यापारिक तथा लेन-देन का कानून, कलोनियल राजनीति, इतने विषय बड़ी सावधानी से और बारम्बार सिखलाये जाते हैं।

२—कानून-प्रथम साधारण कानून या कानून में प्रवेश दूसरा व्यापारिक कानून, लेन-देन का कानून, समुद्र-सम्बन्ध कानून इत्यादि, तीसरा इण्टर नेशनल कानून (कान्सलेट आदि में नोकरी करके विदेश में जाने के लिए), चौथा फ़ाकुर्सदेश या बक़रप्टसी अथवा दिवाले के विषय का क़ानून, पाचवा आब्लिगेशन्स, छठा कापी-राइट, सातवां धन्धा विषयक कानून, आठवा इन्शुरन्स कानून, इत्यादि।

३—भूगोल-सामान्य भूगोल, भूपृष्ठ-शास्त्र (फिजिकल जिआग्रफी), ऑओपोजिआग्रफी, राजकीय और व्यापारिक भूगोल इन्हीं में एथनालोजी, सोशियालोजी और आर्थोपेलोजी भी गिनी जाती है।

४—व्यापारिक-विषय-पत्र-व्यवहार, अकौटिङ्ग, व्यापार गणित, जमाखर्च, मेकेनिकल टेक्नालोजी आफ टेक्सटाइल केमिकल टेक्नालोजी इत्यादि।

५—व्यापारिक शिक्षकों के लिए आवश्यक विषय मानस शास्त्र, तत्त्वज्ञान, और शिक्षा शास्त्र का ज्ञान।

६—सामान्य संस्कृति देनेवाली शिक्षा—इतिहास साहित्य, कला कौशल का इतिहास, नई भाषायें और सृष्टि शास्त्र। इन विषयो पर विश्वविद्यालयों में जो व्याख्यान होते हे उनको सुनने के लिए विद्यार्थी उत्साहित किये जाते है।

परीक्षा।

इस प्रकार जब कम से कम पाच सेमेस्टर तक शिक्षा हो जाती है, तब वह विद्यार्थी परीक्षा में बैठ सकता है। परीक्षा के लिए परीक्षक-मण्डल को अर्जी देनी पडती है। उस अर्जी

के साथ जर्मन विद्यार्थी को ६० और अन्य विदेशियों को १०० मार्क परीक्षा-शुल्क के भरने पड़ते हैं। जिस कालेज की परीक्षा में बैठना है, उसकी पांच में से कम से कम तीन टर्म्स तो अवश्यही पूरी किये होना चाहिए, और अर्थ शास्त्र, चलते हुए सिक्कों का शास्त्र, व्यापारिक अर्थात् देन लेन का कानून व्यापारिक भूगोल इतिहास, शिक्षा, सहकारी सभा, व्यापारिक नीति अर्थ शास्त्र का इतिहास, बीमा, उपनिवेशों का प्रबन्ध और संख्या शास्त्र इनमें से कमसे कम दो विषयो के व्याख्यान श्रवण करने का सर्टिफिकेट पेश करना होता है। इसी के साथ साथ व्यापारिक हिसाब, राजकीय-गणित, जमाखर्च, व्यापार-सम्बन्धी पत्रव्यवहार आदि का प्रयोगात्मक ज्ञान होना लाजिमी है। परीक्षा दो प्रकार की होती है, एक तो लिखी और दूसरी मुखाग्र। लिखी परीक्षा में एक तत्त्व-ज्ञान और एक प्रयोगात्मक, ऐसे दो विषय लिये जाते है, और हरएक पर चार २ घण्टे के भीतर निबन्ध लिख देना पड़ता है। मुखाग्र परीक्षा ऊपर कहे गये सब विषयो में देनी पड़ती है। उन सबको मिलाकर साढ़े तीन घण्टे से अधिक समय नहीं दिया जाता। जिन विद्यार्थियो ने इंगलिश और फ्रेञ्च भाषा का अभ्यास प्रथम से न करके उसका सर्टिफिकेट हासिल नहीं किया है, उनको पहले इन भाषाओं की परीक्षा देनी होती है और पश्चात् उपर्युक्त विषयो की।

अध्यापक का काम करनेवालो के लिए एक भिन्न परीक्षा रहती है। यह परीक्षा देनेवालो को ऐसा सर्टिफिकेट पेश करना होता है कि वे माध्यमिक शिक्षाकी 'डिपार्टमेण्टल परीक्षा पास कर चुके हैं, अथवा वे किसी भी तरह की माध्यमिक पाठ

शाला में नौ वर्ष तक पढ़ चुके हैं। इसके सिवा जो मनुष्य पाच वर्ष तक प्रत्यक्ष व्यापार में रह चुका है, वह भी पाच सेमेस्टर की शिक्षा प्राप्तकर इस परीक्षा में बैठ सकता है।

जर्मनी में लाइप्झिक कालेज के अतिरिक्त इस प्रकार के कालेज केवल दो-चार ही और हैं। सन् १९११ के ग्रीष्मकाल में लाइप्झिक कालेज में जर्मन विद्यार्थियों की सख्या २४५ और अन्य देशों के विद्यार्थियो की २५० थी। इस पर से पाठकगण अनुमान कर सकते हैं कि परदेशों में भी ये कालेज कितने महत्व के समझे जाते हैं। अध्यापकों की सख्या लगभग २० है। इनमें भी प्रति अध्यापक के पीछे कोई १७ विद्यार्थियों का औसत पडता है। यह प्रमाण भी विश्वविद्यालयो के समान ही है। इनका सब व्यय सरकार, नगर, और हण्डेल्स कामर मिलकर देते हैं, जिनके विषय में विश्वसनीय आँकडे प्राप्त नहीं हुए॥

चौथा अध्याय।

कुछ अन्य तरीके।

जर्मनी में व्यावहारिक शिक्षा के लिए ऊपर कहे हुए दो तरीकों के अलावा कुछ और भी फ़िरकोल तरीके है। उनमें से कुछ का तो कहीं कहीं के विश्वविद्यालयों में समावेश हो जाता है। उदाहरणार्थ म्यूनिख़ेन और लाइप्झिक विश्वविद्यालयों में कृषि विद्या की शिक्षा दी जाती है। कुछ स्थानों के टेक्निकल कालेजो में शिक्षा का भी एक पहलू रहता है, तो कहीं कहीं केवल शिक्षा विषय के लिए स्वतन्त्र कालेज हैं।

र्बलिन में एक कृषि कालेज है। इसमें भी प्रवेश आदि के सब नियम टेक्निकल कालेजों के समान ही हैं। परीक्षा के लिए चार सेमेस्टर पर्याप्त होते हैं। परीक्षा शुल्क १२० मार्क है। सन् १६०१ में इस कालेज की विद्यार्थी संख्या कोई १०७८ थी। पांच लाख मार्क का व्यय हुआ, जिसमें से चार लाख सरकारी कोष से दिया गया। इस कालेज में शिक्षा के तीन विभाग कर दिये गये हैं। पहला कृषि और तत्सम्बन्धी शास्त्र, दूसरा टेक्निकल और तीसरा तत्सम्बन्धी व्यवहार।

२—बर्लिन में प्राणि वैद्यक का एक स्वतन्त्र कालेज है। इसमें भी सब बातें अन्य कालेजो के समान ही हैं। शुल्क १०० मार्क और अभ्यास सात सेमेस्टर का होता है। विद्यार्थियो की संख्या केवल ३०१ ही है, परन्तु उसके लिए पांच लाख मार्क व्यय होते हैं जिसमें से आधी रकम सरकार देती है।

३—'बेर्गआकाडेमी' (माइनिङ्ग एकाडेमी)—इस में खनिज धातु विषयक सब प्रकार की शिक्षा दी जाती है, जैसे भट्टिया लगाकर धातुएँ शुद्ध करना तथा क्षार-विषयक बातो की जानकारी हासिल करना इत्यादि। * तीन से चार सेमेस्टर तक शिक्षा प्राप्त कर लेने पर शिक्षार्थी डिग्री की परीक्षा में बैठ सकता है। इस में १६११ में २५० विद्यार्थी पढते थे। एक वर्ष का व्यय सात लाख मार्क हुआ और यह कुल व्यय सरकार की ओर से दिया गया।

---

*श्रीयुत सत्यनेधराव हुडलीकर एम० ए० लिखते है कि "'तीन से चार सेमेस्टर' की बात गलत है। क्योंकि बर्लिन म १० सेमेस्टर तथा फ्रायबर्ग (सेक्सनी) म ८ सेमेस्टर (टर्म) भरे बिना विद्यार्थी परीक्षा मे नहीं बैठ सकता। इस परीक्षा के बाद डिग्री नहीं, किन्तु डिप्लोमा' मिलता है।"

—अनुवादक।

४—'फोर्स्ट आकाडेमी' (फारेस्ट एकाडेमी)—अर्थात् जिस को हम जङ्गल का महकमा कहते हैं, उसके लिए सब आवश्यक शिक्षा इस में दी जाती है। ट्यूबिङ्गेन में विश्वविद्यालय की एक शाखा है। हमारे भारतवर्ष में जो युरोपियन फोरस्ट आफिसर होकर आते हैं, वे सब यहापर निदान एक वर्ष तो अवश्य ही उक्त विभाग का परिचय प्राप्त करने में लगाते हैं। बर्लिन में इसका एक स्वतन्त्र कालेज है। इसमें प्रति सप्ताह २० घण्टे शिक्षा दी जाती है, और छ सेमेस्टर तक पढ़ाई होती है। परीक्षा-शुल्क ७१ मार्क है। इस में सन् १९११ में केवल ५६ विद्यार्थी ही पढते थे। एक वर्ष का व्यय १॥ लाख मार्क हुआ, जिसमें से १ लाख ४० हजार मार्क सरकार ने दिये।

इसके अतिरिक्त सङ्गीत की एकाडेमी निराली है।

विशिष्टीकरण।

इन उपर्युक्त सब सस्थाओं का उद्देश्य यही है कि हरएक खास खास धन्धो का, तथा व्यापार का साङ्गोपाङ्ग और आज दिन तक का सम्पूर्ण ज्ञान व्याख्यानो और प्रयोगों द्वारा मनुष्यों को मिले, अतएव इनमें से तैयार होकर जो मनुष्य निकलते हैं, वे वास्तव में ससार की व्यापारिक और औद्योगिक स्पर्द्धा में प्रवेश करने के लिए सब तरह से पूर्ण ज्ञानी और अनुभवी होते हैं। केवल पच्चीस वर्ष की ही अवधि में जर्मनी ने इङ्गलैण्ड से व्यापारिक स्पर्द्धा करके ससार के व्यापार में जो द्वितीय स्थान प्राप्त कर लिया है, उसका मूल मन्त्र इसीमें है। सर्वज्ञ मनुष्य तभी उत्पन्न हो सकते थे जब सासारिक-व्यवहार विशेष उलझनमय नहीं थे, परन्तु ज्यो

ज्यों व्यवहार का विस्तार होता गया, उसकी अनन्त शाखा-प्रशाखाएँ ज्यों ज्यों जगत में फैलती गईं, त्यों त्यों सर्वज्ञ मनुष्यों के लिए संसार में जगह कम होती गई। ज्ञान की अथवा व्यवहार की एक छोटीसी शाखा ही इतनी बढ़ने लगी कि उस अकेली का आकलन करना किसी एक मनुष्य की शक्ति से बाहर का काम होने लगा। ऐसे समय में यही एक बात रह गई कि मनुष्य इस प्रचण्ड जाल का एकही धागा मजबूत पकड़ कर उसको सुलझाने की कोशिश किया करे। जिन्होंने संसार की इस वर्त्तमान दशा पर सूक्ष्मतया विचारकर उसे अजमाया, वे शीघ्र ही जागृत हो उठे। उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से श्रम विभाग और विशिष्टीकरण का अवलम्ब लिया। इस प्रकार के जाग्रत हुए राष्ट्रों में से जर्मन राष्ट्र भी एक है। जर्मनी का पूर्व परम्परागत स्वभाव है कि वह जिस प्रश्न को हाथ में लेता है, उसकी पूर्ण रीति से साङ्गोपाङ्ग पूर्ति करता है, और इसी स्वभावानुसार उसने इस विशिष्टीकरण के तत्त्व को भी चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। यही कारण है कि आज जर्मनी में ज्ञान की, और व्यवहार की प्रत्येक शाखाओं की सेकडो पाठशालाएँ और कालेज देखे जाते है। इसमें तिलमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है। विशिष्टीकरण के तत्त्व का ऐसा बोलबोला हुआ देखकर हर एक विदेशी आश्चर्य में दङ्ग होकर रह जाता है।

भाग छठवां ।

उपसंहार ।

यहाँतक हमने जर्मनीकी भिन्न भिन्न प्रकारकी शिक्षाओं का यथामति विवेचन कर दिया। जर्मनी की शिक्षा अनेक प्रकार की परिस्थितियों में से गुजरती हुई दोनों ओर से उन्नत हुई है। अतएव हम उसकी और भारतवर्षीय शिक्षा की तुलना नहीं कर सकते। जर्मनी में शिक्षारूपी बीज बड़ी सुव्यवस्था के साथ बोया गया है तथा उसका अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग पोषण योग्य रीति से हुआ है। इसके विरुद्ध हमारे भारतवर्ष में शिक्षारूपी बीज एक अपरिचित स्थिति में बोया गया और इसीलिए उसकी सन्तोषदायक उन्नति न हो सकी। वह बीज उस प्रकार नहीं बढ़ सका, जैसा कि उसे स्वाभाविकतया बढ़ना चाहिए था। उसमें समय समय पर कई जोड़ लगाये जाते हैं। शिक्षा की उन्नति किसी खास उद्देश के अनुसार नहीं हुई और न होती है। उसकी भिन्न भिन्न शाखाएँ एक दूसरी से विरुद्ध हैं—उनमें एकरूपता नहीं की गयी। उदाहरणार्थ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि प्रारम्भिक शिक्षा और माध्यमिक-शिक्षा में परस्पर कोई मेल नहीं है। जो विषय प्रथमके चार वर्षों में पढ़ाये जा चुके हैं, उन्हीं विषयों में से कई विषय बादके सात वर्षों में पुनः अङ्गरेजी द्वारा पढ़ाये जाते हैं। इसी तरह माध्यमिक-शिक्षा का भी आगे की शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा गया है। इस बात पर कोई ध्यान ही नहीं देता कि पहले क्या शिक्षा दी जा चुकी है, और अब आगे उसी पायेपर क्या देनी चाहिए। संस्कृत शिक्षा

मैट्रिक तक कितनी दी जाती है तथा कितनी दी जानी चाहिए, और उसका विचार कर आगे के तीन-चार वर्षों में कौन कौनसी पुस्तकें को चुनना चाहिए, इस पर भी कोई ध्यान नहीं देता। इतिहासको भी यही हालत है। सप्तम श्रेणी तक भारतवर्ष का इतिहास क्या पढ़ाया जाता है? इसका उत्तर यही देना होगा कि विद्यार्थियों को केवल वंशावली, सन् और कुछ लड़ाइयों का हाल रटा दिया जाता है। इसके बाद वह पुन एक वर्ष बाद कालेजके इण्टर-मिजिएट क्लासमें जाकर शुरू कराया जाता है। माध्यमिक-शिक्षा में सृष्टि-शास्त्रों को जितना महत्त्व देना चाहिये था, उतना नहीं दिया जाता। हम कह सकते हैं कि माध्यमिक शिक्षा का पाया बालू की रेत पर डाला गया है, तथा वह इतना कमजोर है कि न मालूम कब उसके ऊपर की इमारत खिसक पड़े, इसका कोई नियम नहीं। विद्यार्थी अपने जीवन का अमूल्य समय, लगभग ग्यारह बारह वर्ष इस शिक्षामें व्यय करता है, और अन्त में उसके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। मातृ भाषा की शिक्षा तो दरकिनार रही, पर संस्कृत-शिक्षा भी सन्तोषप्रदायक नहीं हो पाती। इसके सिवा सात वर्ष की मिहनत और माथा पच्ची करने के उपरान्त इंग्लिश भाषाका ज्ञान नहीं के बराबर रहता है। यह लीजिये, यह सात वर्षों की माथापच्ची और अर्थ व्यय का सुफल प्राप्त हुआ !!

यदि कहो कि इसके बाद विश्वविद्यालय की शिक्षासे ही कुछ लाभ होता होगा, सो भी कुछ नहीं। हम कह सकते हैं कि जो युवक चार पाँच वर्ष तक यह शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं, उनमें भी इस जीवन-कलहमय संसार में प्रवेश करने की पात्रता नाम मात्र की होती है। अनेक लोग जो यह आक्षेप

भाषा द्वारा प्रथमा में चार वर्ष, और मध्यमा में जैसे तैसे करके केवल दो वर्ष तक शिक्षा दी जाती है, इसके बाद कुल विषय अंग्रेजी भाषा द्वारा सिखलाये जाते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु संस्कृत, गणित, इतिहास तथा मातृ-भाषा तक भी अंग्रेजी ही द्वारा सिखलाई जाती है। मातृ भाषा के परचे अङ्गरेजी में निकाले जाते हैं और उनके उत्तर भी अंग्रेजी में लिखने पड़ते हैं। यदि इस बात को कोई विदेशी शिक्षा-प्रेमी सुने तो सम्भव है कि वह प्रथम तो इसको सत्य ही न माने। इसीलिए इन विषयो के पाठ मुख्यकर अंग्रेजी के पाठ बन बैठते हैं। संस्कृत की पहली पुस्तक का सन्धि विषय, जोकि एक विद्यार्थी साधारणतया याद कर सकता है, भी अंग्रेजी के लम्बे लम्बे शब्दों द्वारा ऐसा दुर्बोध बना दिया है कि बिचारे विद्यार्थियो का समय उनके याद करने में व्यर्थ नष्ट होता है। क्याही विचित्र और हास्यास्पद स्थिति है कि प्रथम तो 'पेनल्टिमेयट, एण्टिपेनल्टिमेयट, कोयलेस' आदिके समान लम्बे लम्बे अंग्रेजी शब्दोंको रटना पड़े और फिर कहीं जाकर नियमों के सच्चे कार्य्यकी ओर मुड़ना पड़े !! जो शिक्षक इस विषय की अभिज्ञता रखते हैं, उनको अनुभव होगा कि उदाहरणों के विषय में शब्दों और वाक्यो के अर्थ करने में ही कितना अमूल्य समय नष्ट हो जाता है। यही हालत इतिहास की है। मुझे खूब याद है कि जब मैं चतुर्थ और पञ्चम श्रेणी को पढ़ाता था, तब उनमें अनुक्रमसे 'सिङ्क्लेअर का इतिहास' और 'एम्पायर हिस्टरी' पढानी पड़ती थी। उस समय मुझको इन दो ग्रन्थो का भाषाशास्त्र की दृष्टिसे बरपर अध्ययन करना पड़ता था। यद्यपि अब वे पुस्तकें बदल दी गयी हैं, तथापि खेद है कि उसके पढ़ाने की रीति

में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इससे यह होता है कि इन विषयों में जितना समय लगना चाहिये, उससे दुगुणा समय खर्च करके भी पल्ले कुछ नहीं पडता। मुझे विश्वास है कि जो लोग मास्टर या अध्यापक हैं, तथा जिनको शिक्षा-विषय का कुछ अनुभव है, वे अवश्यही मेरे उपर्युक्त मतसे सहमत होंगे। यदि यह कहा जाय कि इस प्रणाली-द्वारा और कुछ नहीं तो न सही, किन्तु अँग्रेजी भाषाका ज्ञान तो खूब बढ जाता है; तो यह भी बात गलत है। क्योंकि मुझे अनुभव है कि वर्तमान में अँग्रेजी भाषा सप्ताह में ग्यारह या बारह घण्टो तक पढ़ाई जाती है, तथा इसी प्रकार सात वर्षों की मगजपच्ची करने पर भी जब विद्यार्थी मैट्रिक तक शिक्षा पा लेता है, उस समय एक साधारण विद्यार्थी में इतनी भी योग्यता नहीं आती कि वह अँग्रेजी के एक-दो वाक्य ठीक ठीक लिख सके या बोल सके।

बडे बडे विद्वानो की बात तो एक ओर रही, परन्तु अब किसी एक लडके से भी पूंछा जाय, तो वह यही उत्तर देगा कि केवल एक अँग्रेजी भाषाको छोड सब विषय मातृ-भाषा द्वारा सिखलाये जाने चाहिए। किन्तु बडे ही लज्जा और शोक की बात है कि जब यह विषय बडे लाटकी कौन्सिल में पेश हुआ था, तब हमारे ही देश के माननीयो (आनरेबलो) ने इस बातका प्रतिवाद किया था! इसके लिए हम अधिक न कह कर इतनाही कहेंगे कि यह भारतीयो के लिए महान् शोक और लज्जा की बात है। अभी कुछ दिनो पूर्व राष्ट्रीय सामाजिक परिषद् में एक प्रस्ताव यह पेश किया जानेवाला था कि 'अब मातृभाषाके द्वारा सब शिक्षा देनेका समय प्राप्त हो गया है;" किन्तु बम्बई के कुछ कट्टर सुधारको ने इसका विरोध किया था,

गिने विश्वबन्धुरश्यादी अक्लमन्द और कलकत्ता, बम्बई जैसे अर्ध-भारतीय नगरों के निवासी छोड़ दिये जाय तो शायद ही कोई माई का लाल अन्य जगह निकले, जो यह कह सके कि मातृ भाषा के द्वारा शिक्षा न देनी चाहिये। आश्चर्य की बात तो यह है कि अब सरकार भी इस हास्यास्पद स्थिति को अनुभव करने लगी है, और इसीलिए उसने अपने अधिकाराधित 'स्कूल फाइनल' परीक्षा के विषय में आज्ञा निकाल दी है कि "हरएक मनुष्य केवल एक अंग्रेजी को छोड़कर अन्य विषयों के पेपर अपनी २ मातृ-भाषा में लिख सकता है।" (देखो तारीख २६ अप्रेल सन् १९११ का सरकारी गज़ट)। किन्तु आश्चर्य है कि जो युनिवर्सिटी न तो पूरी सरकारी ही है और न पूरी आनगी है, वह मैट्रिक तक भी अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य विषयों के पेपर मातृ भाषा में लिखने की आज्ञा नहीं देती। अतएव सरकारी आज्ञा हुई और न हुई, दोनों ही समान है। हम कहेंगे कि यदि हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम देशी भाषा न रहा, तो उससे भी कुछ विशेष लाभ होने की सम्भावना नहीं है। यदि विश्वविद्यालय के सञ्चालकों में इतना भी मनोधैर्य्य नहीं है कि वे शिक्षा का माध्यम देशी भाषा न बना सकें तो कहना होगा कि हम अपने हाथों से अपने महत्त्वको गँवा रहे हैं। जबकि हम स्वयं अपनी मातृ भाषा का आदर करना नहीं जानते, तब सरकार को क्या आवश्यकता है कि वह इस विषय में कुछ विशेष कम-ज्यादा करे। एक अंग्रेजी कहावत है कि " God helps those, who helps themselves " अर्थात् ईश्वर भी उसी की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करता है। हम लोग शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा होने से जो जो हानियाँ

उठा चुके हैं और उठा रहे हैं, वे सब अब सूर्यवत् प्रकाशमान हो गई हैं। क्योंकि यद्यपि छः श्रेणियों तक मातृ-भाषा का स्वच्छन्दतासे उपयोग होता है, तथापि सातवीं में जाकर पुनः सब विषय अङ्गरेजी-द्वारा सीखने पड़ते हैं। अतएव इस पद्धति से केवल यही होता है कि समयका अपव्यय अवश्य होता है। हम प्रार्थना करते हैं तथा प्रबल आशा रखते हैं कि अब भी सब विश्वविद्यालय हठको छोड़कर उचित मार्गका अवलम्बन करेंगे, अर्थात् अङ्गरेजी भाषा को छोड़कर सब विषयों के पेपर मातृ-भाषामें लिखने की अनुमति देंगे। निदान यह प्रबन्ध मैट्रिक क्लास तक तो अवश्य ही होना चाहिए।

कितने ही लोगोंका खयाल है कि मातृ-भाषाके द्वारा शिक्षा देनेसे अङ्गरेजी भाषाका लोप हो जायगा। उनके इस कथन से तो हम तथा कई अन्य महानुभाव भी सहमत हैं कि राजनीतिक दृष्टिसे हरएक मनुष्यके लिए अङ्गरेजी बोलना और लिखना जानना आवश्यक है, किन्तु हमारी समझमें यह बात नहीं आती कि इसके बीचमें मातृ भाषा किस प्रकार बाधा डाल सकती है। इसके सिवा उनका यह खयाल भी गलत है कि इङ्गलेण्ड तथा भारत का इतिहास, और गणित आदि विषय अङ्गरेजी द्वारा पढ़ाने से अङ्गरेजी-भाषा की लियाकत खूब आ जाती है। हम ही नहीं, किन्तु जिन्होंने मैट्रिक क्लासकी परीक्षा के कुल विषयों के पेपर जाचे हैं, उनकी भी यही राय है। आज चार छः वर्ष से मैट्रिक के अङ्गरेजी के परीक्षक यही पुकार मचा रहे हैं कि कुछ अपवादों को छोड़कर साधारणतया सम्पूर्ण विद्यार्थियों की अङ्गरेजी बहुत ही खराब रहती है। (देखिये सन् १९१४ और १९१५ के परीक्षकों के रिपोर्ट, जो उन्होंने युनिवर्सिटी में पेश किये हैं) अब विचार कीजिये कि

जब सम्पूर्ण विषयों की शिक्षा अङ्गरेजी द्वारा दी जाती है तब भी अङ्गरेजी की ऐसी हीन दशा क्यों रहती है ? यह सब दोष केवल एक शिक्षा-पद्धति का है। बिचारी मातृ भाषा अङ्गरेजी को कदापि भी बाधा न दे सकती। कमसे कम उसका एक बार प्रयोग तो कर देखिये, कि योंही पहिले से व्यर्थ कुशङ्काएँ खडी करते हैं ? इस प्रकार के प्रयोग आज दिन तक जहाँ जहाँ भी हुए हैं, वहाँ वहाँ उनका परिणाम सन्तोषदायक हो निकला है (उदा० गुरुकुल काङ्गडी, न्यू इंग्लिश स्कूल पूना)। किन्तु यहाँपर जो अडचनें पेश होती हैं, वे दूसरे ही प्रकार की हैं। उनको दूर करना हरएक मनुष्य का आद्य कर्तव्य है। ये अड-चनें मुख्यकर ये हैं—प्रथम तो योग्य अध्यापकों का न मिल सकना, और दूसरी यह कि अभी तक देशी भाषाओं में ऐसी पुस्तकें तैयार नहीं हुई हैं। सन्तोष की बात है कि इस ओर भी योग्य विद्वानों का ध्यान गया है और इन अभावों की पूर्तिका प्रबन्ध भी बहुत कुछ हो गया है, और होता जा रहा है।

जब मातृ-भाषा द्वारा शिक्षा देना प्रारम्भ हो जाय, तब भी मेट्रिक तक के सात वर्ष के अभ्यास समय को कम न करके उतनाही रखा जाय और इस समय जो विषय प्रचलित हैं, उन्हें अधिक पूर्ण बनाकर अन्य उपयोगी विषयों को सम्मिलित करके उसकी उपयोगिता बढा दी जाय। शिक्षा के दो बडे विभाग बनाने होंगे। पट्टी पहाडों की श्रेणी से लगाकर इण्टर-मिजिएट तक जो शिक्षा दी जाती है, उसकी ऐसी रचना की जाय, जिससे वह विद्यार्थियों को सामान्य संस्कृति देनेमें समर्थ हो सके। इसके बाद के चार पाँच वर्षों में ऐसी शिक्षा दी जाय, जो विशिष्टीकरण तत्त्व पर स्थापित हुई हो—जिसमें खास खास विषयों की शिक्षा का समावेश किया गया हो। बहुत ज्यादह

हेर-फेर न करते हुए वर्तमान प्रणाली में अधिक सुधार करके उसे पूर्ण उपयोगी बनाने के उद्देश से अब हम इस विषय पर कुछ विस्तार से लिखना चाहते हैं।

प्रारम्भिक-शिक्षा ।

इस शिक्षाके लिए चार वर्ष पर्याप्त हैं। इसमें केवल यही सुधार हो कि उसमें शिक्षा के नूतन तत्वों का अधिक समावेश किया जाय। यथासम्भव इसमें अधिक सादगी लानेका प्रयत्न किया जाय, तथा उसमें से किण्डरगार्टन अर्थात् वस्तुपाठ का झगडा उठा दिया जाय। इसका कारण यही है कि जबतक हम इस पद्धति का आन्तरिक मर्म नहीं समझ सकते तबतक उसकी शिक्षा देना भी एक प्रकार की धृष्टता होगी। इस शिक्षा का मर्म अभी तक ट्रेनिंग कालेजके कार्यकर्त्ताओं को भी, अर्थात् भावी शिक्षकों के शिक्षकों को भी, मालूम हुआ है या नहीं, इसकी शंका ही है। किण्डरगार्टन पद्धति शिक्षा की प्रेममय रीति है, परन्तु गणित इतिहास के समान कोई स्वतन्त्र विषय नहीं। किन्तु आश्चर्य है कि हमने उसे विषय का रूप प्रदान कर दिया है। जो मनुष्य इस शिक्षाके मर्म को पहचान गया है, उसको यह आवश्यकता नहीं रहती कि वह कोई विशेष साधनों के विनाही अड़ा बैठा रहे। वह मनुष्य अपने आस पास की वस्तुओं में से ही साधन ढूँढ सकता है, उसको किसी विशेष प्रकारकी मिट्टी या गोलियों की ही आवश्यकता नहीं रहती। बिचारे फ्रोवेलने कभी स्वप्न में भी यह सोचा न होगा कि मेरे बाद लोग मेरी पद्धति को इतना कृत्रिम बना देंगे।

दूसरा प्रबन्ध जो होना चाहिए वह यह है कि इन प्रारम्भिक चार वर्षों में विद्यार्थियों को बन्द हवावाले स्थानो में शिक्षा न दी जाय। सप्ताह में कमसे कम दो चार घण्टों के लिए विद्यार्थियों को खुले मैदानो में सृष्टि निरीक्षणार्थ तथा ऐतिहासिक स्थलों के अवलोकनार्थ ले जाना चाहिए। समय समय पर उनकी टुकड़ियाँ बना कर बाहर ले जायी जायँ और इस तरीके से उनसे भूगोल, इतिहास और वनस्पति-शास्त्र की शिक्षा की पूर्व तैयारी करवाई जाय। यदि उनके हाथसे पाठशाला के आसपास ही, या खेल के स्थानो पर फूल फल के वृक्ष तथा पौधे लगवाये जायँगे तो उनको खेल का खेल तथा सृष्टि-निरीक्षण, वनस्पति आदि का प्रत्यक्ष और क्रियात्मक परिचय हो जायगा। यदि सम्भव हो तो विद्यार्थियों द्वारा तोता-मैना के समान पक्षियों की तथा गौ, अश्व, कुत्ता, बिल्ली, खरगोश आदि के समान पशुओं की पालना करवाई जाय। इससे उनको सहज ही में इन प्राणियों का ठीक ठीक ज्ञान हो जायगा और दोनो प्रकार से उनकी जिज्ञासा बढ़ेगी। इसके सिवा आजकल जिधर देखो उधर यही आवाज सुनने में आती है कि पाठशालाके विद्यार्थी निस्तेज तथा अल्पायु निकलते हैं। इसमें बहुत कुछ सत्यांश है। अतएव प्रारम्भिक शिक्षा की रचना ऐसी हो कि जिसके द्वारा ज्ञान तो उतना ही हो, पर विद्यार्थी के मनपर अधिक बोझ न पड़े और वह खेलही खेलमें उसे प्राप्त करले। ऐसा होना तभी सम्भव है जब प्रारम्भिक शिक्षा में ऊपर लिखे अनुसार परिवर्तन किया जाय।

एक बात यह भी कह देना आवश्यक प्रतीत होती है कि प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके मध्यमा की ओर जाने के पूर्व प्रारम्भिक शिक्षामें एक बड़ी भारी त्रुटि है। कल्पना कीजिये

क कोई विद्यार्थी अंग्रेजी की माध्यमिक-शिक्षा नहीं लेना
ाहता अथवा वह ऐसा करने में असमर्थ है । ऐसी हालत में
सके लिए सरकारी स्कूलों में मातृ-भाषा की विशेष शिक्षा पाने
ा कोई प्रबन्ध नहीं है । ऐसे लोगों के लिए केवल 'व्हर्ना-
क्यूलर फायनल' का ही मार्ग खुला हुआ है ।* अन्य देशी
ाषाओं की पाठशालाओं में हिन्दी भाषा आवश्यक विषय
क्खी जाय, जिससे सर्व भाषा भाषी हिन्दी भाषा में अपने
विचार प्रकट कर सकें । भारत के लिए ऐसा होना परम लाभ
ारी है । हिन्दी भाषा की कमसे कम इतनी शिक्षा तो अवश्य दी
ाय कि जिसके द्वारा अच्छे प्रकार बोलना और लिखना आ
ाय । संस्कृत भाषा ऐच्छिक विषय रहे । भारतवर्ष का व्यापा-
िक राजनैतिक और भूपृष्ठका भूगोल मुख्यतासे सिखलाया
ाना चाहिए । सब संसार के भूगोल का साधारण ज्ञान होना
ी आवश्यक है । इङ्गलैण्ड तथा कालनी का परिचय होना
ाहिए, तथा भारत वर्ष का इतिहास और उससे भी मुगल
ाज्य से अबतक के इतिहास का ज्ञान अच्छी तरह से कराया
ाय । वर्तमानकी शासन पद्धति का ज्ञान भी होना चाहिए ।

गणित साधारणतया इस समय वर्नाक्युलर फायनल में
', उतना ही पर्याप्त होगा । पाश्चात्य देशों के संसर्ग से हमारे नित्य

* हर्ष की बात है कि इस कमी का पूरा करने के लिए हिन्दी भाषा-
ाषियों के लिए 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' की ओरसे बहुत कुछ प्रयत्न
िया जारहा है । सम्मेलनकी ओरसे हिन्दीकी 'प्रथमा' मध्यमा' तथा 'उत्तमा'
ामक परीक्षाएँ ली जाती हैं । इससे हिन्दी भाषा भाषियों को हिन्दी की
च्च परीक्षा देने का बड़ा सुभीता हो गया है, किन्तु दुःख है कि अन्य देशी
ाषाओं के लिए ऐसा कोई ठीक प्रबन्ध नहीं है । अतएव अन्य देशी भाषाओं
 लिए भी कोई उत्तम प्रबन्ध होना आवश्यक है — अनुवादक ।

के व्यवहारों में जिन जिन आवश्यक बातों का मिश्रण हो गया है—जैसे कि टेलीग्राफी, टेलीफोन, स्टीम एजिन रासायनिक द्रव्य और गेस आदि—उन उनके मूल तत्वों का—प्राणि-शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, रसायन, और यन्त्र शास्त्र का—सुलभ ज्ञान होना परमावश्यक है। ऐसी शिक्षा शिक्षामय प्रयोगों तथा निरीक्षण द्वारा होनी चाहिए। इसमें ड्राइङ्ग, ड्रिल, और व्यायाम आदि विषय भी रहने चाहिए। अध्यापकी का व्यवसाय करनेवालोंके लिए ट्रेनिंग कालेज बने ही हैं। इसमें तैयार होनेवाले विद्यार्थियों को थोड़ा-बहुत अँग्रेजी जानना आवश्यक है। क्योंकि इसके बिना उनकी दृष्टि विकसित न होगी। अन्य व्यवसाय में पड़नेवालों के लिए ड्राइङ्ग की शिक्षा का विशेष रूपसे प्रबन्ध हो, तथा साधारणतया 'मेन्युअल ट्रेनिंग' अर्थात् हस्त-कौशल का थोड़ा ज्ञान भी होना लाभ-दायक होगा। इसके बाद उनको अपने २ धन्धों में होशियार होनेके लिए समस्त देशमें औद्योगिक पाठशालाओं का एक जालसा बिछा देना होगा। यदि इस ओर सरकार की उदा-सीनता रहे, तो इस प्रश्नको जनता को स्वयं अपने हाथोंमें लेना चाहिए उदाहरणार्थ, हरएक म्युनिसिपैलिटी अपने अपने यहाँ सामर्थ्यानुसार एक एक 'कला भवन' खोल सकती है। इस से और नहीं तो इतना तो होगा नित्यके मुख्य व्यावहारिक उद्योग धन्धे का कुछ ठीक ज्ञान हो सकेगा।

कस्बे तथा गाँवों में रहनेवाले लोगों में शिक्षा प्रेम नहीं है। अतएव उन लोगों में शिक्षा विषयक प्रेम उत्पन्न करना सरकार और समाज, दोनों का ही कर्तव्यकर्म है। यदि सर-कार अपने कर्तव्य कर्म से पराङ्मुख हो जाय तब तो बात निराली है, पर फिर भी विद्वानों को—सुशिक्षितों को—जाग्रत

होकर इस ओर प्रयत्न करना चाहिए। जबतक लोगों में शिक्षा-विषयक प्रेम उत्पन्न न हो जाय, (और हमें विश्वास है कि वह अति शीघ्र उत्पन्न हो सकता है) तब तक शिक्षा पद्धति, उसके साधन, तथा विषयों की ओर विशेष ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टिसे तथा स्वाभाविक प्रवृत्ति से भी यही नियम ठीक माना गया है कि "प्रथम प्रचार, और पश्चात् योग्य अयोग्य का विचार" होना चाहिए जो लोग यह कहते हैं कि उत्तम शिक्षको का अभाव है या द्रव्यकी कमी है, इसलिए शिक्षा प्रचार नहीं हो सकता, उनके लिए यही कहावत चरितार्थ होती है कि "नाचूँ कैसे आँगन टेढा।" इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी तथा अमेरिका में भी प्रथम तो शिक्षा का प्रचार बाहुल्य के साथ हुआ, और बादमें उसके योग्यायोग्य का विचार हुआ था। प्रशिया में एक बार उत्तम शिक्षको के अभाव में शिक्षा का कार्य्य उन निकम्मे सैनिको के सुपुर्द किया गया था, जो कि कुछ थोड़ा-बहुत पढ लिख सकते थे। वहाँकी और यहाँकी स्थितिमें इतनाही अन्तर है कि वहाँपर सरकार और समाज का हिताहित सम्बन्ध एकही है, किन्तु दु:ख है कि हमारे यहाँ अभीतक ऐसी स्थिति उत्पन्न न हो सकी। अतएव जबतक सरकार इस विषय से उदासीन है, तबतक सर्वसाधारण को शिक्षित बनाने के लिए हमें खुद कमर कस लेना चाहिए*। प्रथम कार्य्यारम्भ हो जाना

---

* हर्ष की बात है कि हमारे कुछ देशी नरेशों का ध्यान इस ओर गया है। मैसूर, बडोदा तथा इन्दौर के नरपतियो ने अपनी २ रियासत में अनिवार्य्य शिक्षा का कानून पास कर दिया है। किन्तु जिन जिन देशी रियासतों में या ब्रिटिश भारत में ऐसा कानून नहीं बना है, वहा वहा के लिए उपर्युक्त रीत्यानुसार प्रयत्न होना आवश्यक है —अनुवादक।

चाहिए, फिर बादमें शिक्षा पद्धति का सुधार स्वय हो जायगा। देहाती लोगोंके लिए अभी ऐसी ही साधारण शिक्षा की आवश्यकता है और यह सम्भवनीय भी है। कृषक लोगों के लड़कों की शिक्षा का समय ऐसा रक्खा जाय, जिससे उनकी आजीविका के कामों में कोई विघ्न न आ सके। क्योंकि उनकी वर्तमान स्थिति इसके विरुद्ध कार्य्य करने की आज्ञा नहीं देती। सबसे बड़ी और पहली बात तो यह है कि इन देहाती लोगों में शिक्षा विषयक प्रेम उत्पन्न कर दिया जाय। इनकी शिक्षा का समय प्रातःकाल ७ से ६ या सायंकालको ६ से ८ बजे तक का उपयुक्त होगा। पहले पहल इनकी शिक्षा की अवधि ८ या ६ वर्ष तक की न रक्खी जाय, बल्कि ४ या ५ वर्ष की ही रखना योग्य है। इतनी अवधि में उनको साधारणतया निम्नलिखित विषयों का ज्ञान अवश्य हो जाय — लिखना पढ़ना, हिसाब करने योग्य गणित, पहले उनके ग्रामका और बाद में उनके जिलेका भूगोल, कचहरियों या कोर्टों का साधारण ज्ञान, बस इतने ही विषय पर्याप्त होंगे। सारांश यह है कि शिक्षा द्वारा उनके मुख्य व्यवसायमें बाधा न पड़े, और जिससे वे शिक्षा की उपेक्षा न करने लग जायँ। किन्तु ऐसा किया जाय, जिसके कारण वे शिक्षा प्राप्त करनेमें उत्साहित हों तथा यह शिक्षा उनके व्यवसायों को अधिक सुलभ बना सके। इस प्रकार से यदि हम एक पीढ़ी को साक्षर बना सके, तो हमने बहुत कुछ कार्य्य कर लिया, क्योंकि फिर उनकी भावी सन्तान खुदबखुद शिक्षित बनती जायगी। जहाँतक हो सके, शिक्षा निःशुल्क दी जाय। हमारे माननीय नेता तथा कौन्सिलों के मेम्बर कमसे कम सरकार से इतना तो भी मांग लें कि यदि उससे और कुछ न बने तो कमसे कम इस अल्प प्रयत्न

पर डिपार्टमेंटल डण्डा तो न फिरावे, और केवल अपनी सहानुभूति ही प्रकट कर दे। जर्मनी इङ्गलैण्ड आदि सभ्य देशों में ऐसा ही हुआ था कि पहले जनता ने इस विषयमें अपनी ओर से प्रयत्न किया, और बाद में सरकार द्वारा सहायता मिली। जबकि उन देशोंकी यह हालत है तब यह तो हमारा भारतवर्ष ही ठहरा!

माध्यमिक-शिक्षा।

प्रारम्भिक शिक्षा के विषयमें हमने अपने विचार ऊपर प्रकट कर दिये हैं। इस चार वर्षकी प्रारम्भिक-शिक्षा में से ही माध्यमिक-शिक्षा का विकास होना चाहिए। हरएक प्रान्त में वहाँ की देशभाषा को अग्रस्थान देकर संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी दूसरी भाषा (सेकण्ड लेंग्वेज) के बतौर पढ़ाई जायँ। मातृ-भाषा को पहले के तीन वर्षों तक प्रति सप्ताह ५ घण्टे, और बादके वर्षों में ३ घण्टे दिये जायँ। मातृ-भाषा के दायरे में मुख्यकर इन बातों का समावेश होना चाहिए—लिखना पढ़ना अच्छा आ जाय, मातृ-भाषा के मुख्य मुख्य आधुनिक ग्रन्थकार, कवि, और नाट्यकारों के तथा प्राचीन काल के मुख्य मुख्य कवियों के बहुत से ग्रन्थों का अच्छा परिचय हो जाय। अंग्रेजी-भाषा प्रथम या द्वितीय वर्ष से प्रारम्भ हो और उसके लिए प्रति सप्ताह ४ से ६ घण्टे पर्याप्त होंगे। याद रहे कि अंग्रेजी भाषा को ६ घण्टों से अधिक समय कदापि न दिया जाय, तथा यह भाषा सम्भाषण की शैली से सिखलाई जाय। आँग्ल भाषा की शिक्षा में इन बातों पर विशेष ध्यान रहे कि व्याकरण के शुद्ध नियमानुसार लिखना बोलना अच्छी तरह आ जाय तथा इंग्लिश साहित्य में गत शताब्दि

में जो मुख्य मुख्य ग्रन्थकार और कवि हो गए हैं, उनके सुलभ ग्रन्थ पढ़ लिये जायँ। 'टाइम्स' के समान वर्तमान पत्र न अटकते हुए पढ़े और समझे जा सकें। इसके सिवा गत शताब्दि में आंग्ल-भाषा के जो जो सुप्रसिद्ध कवि तथा ग्रन्थकार हो गए हैं, उनकी सरल पुस्तकों का भी अध्ययन कराया जाय। गणित विषय के लिए प्रथम के दो वर्षों में उच्च अङ्क-गणित, बाद में बीज गणित और तत्पश्चात् भूमिति सिखलाई जाय। इसके लिए प्रति सप्ताह ५ घण्टे पर्याप्त होंगे। यदि मैट्रिक क्लास तक 'प्रीव्हियस' जितना गणित हो जाय, तो भी कोई हानि नहीं। इसका कारण यही है कि उस समय अंग्रेजी को छोड़कर कुल विषय मातृ-भाषा द्वारा सिखलाते हैं और इसी लिए इतनी अधिक गणित की शिक्षा मैट्रिक तक हो जाना सम्भव है। भूगोल और इतिहास का सिलसिला न टूटने के लिए इनकी शिक्षा के निमित्त चार घण्टे पर्याप्त हैं। भूगोल की शिक्षा के लिए यही शैली ठीक होगी कि प्रथम तो उस प्रान्त का भूगोल, फिर भारतवर्ष का, तत्पश्चात् इङ्गलैण्ड तथा कोलनीज़ का, और अन्त में सम्पूर्ण संसार का भूगोल पढाया जाय। इतिहास विषय में पहले भारत का इतिहास पढाया जाय और उसके साथ वर्तमान शासन पद्धति का साधारण ज्ञान कराया जाय। इस समय प्रारम्भिक पाठशालाओं तथा मध्यमा की निचली श्रेणियों में इतिहास की जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, वे बिलकुल निरुपयोगी हैं। ये पुस्तकें ऐसे लेखकों द्वारा लिखी गई हैं जो इतिहास के विकास तथा मुख्यतः भारतीय इतिहास के मर्म से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। वे लेखक इस कार्य्य के अयोग्य हैं। इतिहास लेखन कार्य्य उस भारतीय के द्वारा कराया जाना चाहिए जो किसी कालेज

में भारतीय इतिहास का प्रोफेसर हो। तभी जाकर विद्यार्थियों के हाथ में इतिहास की योग्य पुस्तकें आ सकेंगी। ऐसी पुस्तकों को लिखते समय इस बात पर विशेष ध्यान रहे कि मैट्रिक तक के विद्यार्थी को वर्तमान शासन-पद्धति का साधारण ज्ञान हो जाय। इससे विशेष लाभ यह होगा कि जो विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं, उनको भी वर्तमान भारतीय शासन-पद्धति के आवश्यक ज्ञान से वञ्चित न होना पड़ेगा। इतिहास-भूगोल की पुस्तकें लिखते समय तथा शिक्षा देते समय इस बात पर अधिक ध्यान दिया जाय कि विद्यार्थी के हृदय में अपने देश के प्रति प्रेम-वृद्धि हो, उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न हो तथा उसको अपनी निज की शक्तियों का पता लग जाय। हमको यह बात विवश होकर स्पष्ट कहनी पड़ती है कि वर्तमान की प्रचलित ऐतिहासिक पुस्तकों से स्वाभिमान तथा देशाभिमान का अङ्कुर समूल नष्ट हो जाता है। हम भी मनुष्य हैं, श्रेष्ठ हैं, हमारे भी कर्तव्य तथा उद्देश उच्च हैं—इस प्रकार की सद्भावनाओं का योग्य पोषण इतिहास के ही परिशीलन से होता है।

इङ्गलैण्ड का इतिहास उतना ही रहना चाहिए, जितना इस समय स्कूलों में पढ़ाया जाता है। किन्तु उसमें से ट्युडर घराने का अनावश्यक पूर्व भाग निकाल डाला जाय, या शृङ्खला न टूटने के लिए अति संक्षिप्त रूप में लिखा जाय तो भी कुछ हानि नहीं है। मुख्य कटाक्ष तो इस बात पर होना चाहिए कि आँग्ल शासन पद्धति का विकास किस प्रकार से होता गया। इसकी पढ़ाई में यदि यह क्रम रखा जाय तो भी उत्तम है —प्रथम के तीन वर्षों में ट्युटर से लगाकर वर्तमान

समय तक का इतिहास पढ़ाया जाय, और शेष वर्षों में शासन पद्धति का ज्ञान कराया जाय। मैट्रिक क्लास के विद्यार्थियों की सर्वसाधारण उम्र का ख्याल करते हुए यह प्रतीत नहीं होता कि उपर्युक्त शिक्षा उनकी शक्ति से बाहर है। कुछ अंग्रेज अधिकारियों ने अपनी चलती में विश्वविद्यालय की शिक्षा में से इतिहास के समान आवश्यक विषय को अर्ध-चन्द्र दे दिया है, अतएव इसमें हमारा कोई वश नहीं है, परन्तु हम अपने सुशिक्षित भाइयों से निवेदन करते हैं कि वे अब ऐसी कोशिश करें जिससे कमसे कम इस विषय की शिक्षा माध्यमिक पाठशालाओं में उपर्युक्त क्रमानुसार दी जा सके।

इस समय संस्कृत शिक्षा का प्रारम्भ चौथे वर्ष से होता है। यदि यह अब भी वैसी ही रहे तो कोई हानि नहीं। पाश्चात्य देशों के अनुभव से यह बात उपयुक्त जान पड़ती है कि संस्कृत शिक्षा को तीन वर्ष ऊपर खींच कर अंग्रेजी भाषा-शिक्षा दो-तीन वर्ष आगे ढकेल देनी चाहिए। अंग्रेजी और संस्कृत सिखाने की पद्धति बदलना है, इसलिए ऐसा करने से किसी भी प्रकार के अनिष्ट परिणाम की सम्भावना नहीं है। यदि यह बात अभी न हो सके, तो इतना तो अवश्य ही होना चाहिए कि उसके सिखलाने की पद्धति बदल दी जाय। संस्कृत शिक्षा में भी यही नियम हो कि 'प्रथम भाषा, और पश्चात् व्याकरण।' चतुर्थ श्रेणीमें 'हितोपदेश' की सरल कहानियों की कोई छोटीसी पुस्तक लड़कों के हाथ में दी जाय। शिक्षक इसी पुस्तक पर से शनै शनै व्याकरण की सरल शिक्षा दे। दूसरे वर्ष अध्यात्म रामायण तथा महाभारत के आख्यानों के सरल २ भाग, कादम्बरी के

सरल भाग (लम्बे लम्बे समास और क्लिष्ट रचना को छोड़कर), और व्याकरण की सहायता के लिए भाण्डारकर की या भाषा की कोई प्रथम पुस्तक पढा दी जाय। छठी श्रेणीमें कादम्बरीसार, रघुवंश और कुमारसम्भव के सरल अनुष्टुप छन्दों के सर्ग, तथा भाण्डारकर की दूसरी पुस्तक का पौना हिस्सा हो जाय। भास कृत मध्यम व्यायोग, कर्णभार के समान एक दो सरल नाटक पढ़वा लिये जायँ। अन्तिम वर्ष महाभारत का कोई सा भी भाग समझाया जाय, दशकुमारचरित्र (अश्लील और क्लिष्ट रचना छोडकर) पढा लिया जाय, तथा मालविकाग्निमित्र के समान नाटक, रघुके समान काव्य समझ में आ जायँ। देशी भाषाओं से संस्कृत में अनुवाद कराना बिलकुल छोड दिया जाय। इससे बालकों का बहुतसा समय और परिश्रम बच जायगा। क्योंकि हमें शास्त्री और पण्डित तैयार नहीं करना है, किन्तु संस्कृत में की श्रेष्ठ संस्कृति प्राप्त कर लेना है। संस्कृत के लिए चार घण्टे पर्याप्त हैं।

हिन्दी-भाषा-भाषियों के अतिरिक्त अन्य देशी भाषा-भाषियों के लिए अर्थात् बङ्गला, मराठी, गुजराती और तेलगू आदि भाषाएँ बोलनेवालों के लिए हिन्दी भाषा का प्रारम्भ दूसरे वर्ष से चौथे वर्ष तक रख दिया जाय, तो भी काम चल सकता है। हिन्दी-भाषा-शिक्षा का मुख्य हेतु यही है कि उस भाषा को समस्त देशवासी सरलता से बोल सकें। हिन्दी का प्रसिद्ध और सरल साहित्य इन तीन वर्षों में कुछ कुछ पढ़ा दिया जाय। जब दो भिन्न भारतीय भाषा-भाषियों को परस्पर वार्तालाप करने का प्रसङ्ग आवे, तब एक विदेशी भाषा का उपयोग न करना पड़े। यद्यपि आज कल जब दो आंग्ल-भाषा

सम्पन्न भारतीय परस्पर मिलते हैं, तब वे अपना काम अँग्रेजी भाषा से निकाल लेते हैं, परन्तु सबके लिए यह बात नहीं है। क्योंकि जब दो भिन्न भाषा भाषी अशिक्षित भारतवासी परस्पर मिलते हैं तब बहुधा ऐसा दृश्य देखने में आता है मानो दोनो ध्रुवों के दो निवासी एक दूसरे के सामने खड़े हुए हैं। एक राष्ट्रीयता की दृष्टि से भी हिन्दी भाषा सीखना आवश्यक है, इतना ही नहीं बल्कि अनिवार्य्य भी है। इन तीन वर्षों में हिन्दी भाषा के श्रेष्ठ और सरल साहित्य से विद्यार्थी परिचित करा दिया जाय। इस शिक्षा के लिए प्रति सप्ताह ४ घण्टे पर्याप्त हैं।

माध्यमिक शिक्षामें आधुनिक विज्ञान के मूल तत्त्वों का तथा यन्त्रशास्त्र और रसायन शास्त्र की प्रयोगात्मक शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। इस शिक्षा के लिए प्रथम से अन्त तक प्रति सप्ताह २ घण्टे ही पर्याप्त हैं। साधारणतया इस शिक्षाका यह क्रम रक्खा जाय—सबसे पहले वनस्पति का परिचय अर्थात् बीज, अङ्कुर, उसकी वृद्धि, फलफूल, उनकी रचना, उनकी जातियाँ और उनका उपयोग, इसके बाद प्राणियों के शरीर रचना का ज्ञान और तत्पश्चात् रसायन और यन्त्र शास्त्र के प्रयोग। वनस्पति-शिक्षा में ऐसे वनस्पतियों का चुनाव होना चाहिए जो उन उन स्थानों में बहुलता से उत्पन्न होते हों, जो भारत ही में पैदा होते हैं। इसी प्रकार प्राणि शास्त्र के विषय में समझिये। जो प्राणी लड़कों की नजर से रात दिन गुजरते हैं, ऐसे प्राणियों से ही प्राणि शास्त्र की शिक्षा का आरम्भ किया जाय। मनुष्य की शरीर-रचना का ज्ञान होना भी आवश्यक है। इसीके साथ थोड़ीसी 'फर्स्टएड' भी सिखाई जाय। इन सम्पूर्ण विषयों की पाठ्य प्रणाली ऐसे मनुष्यों द्वारा

निश्चित कराई जाय जो इन विषयों के विशेषज्ञ हों। शिक्षा क्रम किसी एक खास मनुष्य द्वारा बाँध देना बहुत बुरा है, और इसीलिए अनेक मस्तिष्कों-द्वारा यह क्रम निर्धारित कराया जाय। इस प्रणाली-द्वारा शिक्षा देने से एक बड़ा भारी लाभ यह होगा कि 'प्रिव्हियस में वा फिजिक्स' पहले ही हो जायगा और उसकी जगह पर कोई अन्य आवश्यक और उपयोगी विषय रक्खा जा सकेगा।

'सम्भव है, हमारी उपर्युक्त सूचनाओं में से कइयों में नूतनत्व न हो। क्योंकि इस समय देश की कई संस्थाएँ मातृ-भाषा-द्वारा शिक्षा दे रही हैं और उसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है—जैसे कि गुरुकुल काँगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन, न्यू इंग्लिश स्कूल पूना आदि। इन संस्थाओं में विज्ञान शिक्षा भी सन्तोषदायक रीति से दी जाती है। खैर, यह तो हुई कुछ खास खास विद्यालयों की बात, किन्तु हमने अपने विचार इसलिए प्रकट किये हैं कि अन्य विद्यालयों का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हो। हो सकता है कि हमारे सभी विचार किसी को मान्य न हो सकें, किन्तु हमें विश्वास है कि इसके द्वारा हमारे शिक्षाप्रेमी भाइयोंको कुछ सहायता अवश्य ही मिलेगी। जो काम एक मस्तिष्क के लिए बड़ा कठिन जँचता है, वही काम अनेक मस्तिष्कों के मिलने से अति सुकर हो जाता है।

इस समय ड्राइंग की शिक्षा सभी पाठशालाओं में दी जाती है। हर्ष की बात है कि कहीं कहीं, 'मेन्युअल ट्रेनिंग' की शिक्षा भी दी जाने लगी है। व्यायाम के लिए कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि आजकल मर्दानी खेलोंका महत्त्व बढ़ता जाता है। हाँ, हम इतना अवश्य कहेंगे

कि कई देशी खेल भी इनके अन्तर्गत किये जा सकते हैं। यदि आप चाहें तो देशी खेलों को आवश्यकतानुसार सुधारकर उन्हें अधिक उपयोगी बना लें, किन्तु विना कारण उनका त्याग करना ठीक नहीं।

संगीत शिक्षा प्रथम के तीन वर्षों तक आवश्यक रहे और बाद में ऐच्छिक कर दी जाय।

इस तरह से इस माध्यमिक-शिक्षा को सब तरह से परिपूर्ण बना देना चाहिए। इस शिक्षा के विषय में जनता की यह भावना हो जानी चाहिए कि जिस मनुष्य ने माध्यमिक शिक्षा पूर्णतया प्राप्त कर ली, मानो उसने सर्वश्रेष्ठ संस्कृति प्राप्त कर ली। यदि जनता की ऐसी भावना न हुई तो हम उसको माध्यमिक-शिक्षा नहीं कह सकते। जो विद्यार्थी विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हैं, उनके लिए उपर्युक्त प्रकार की शिक्षा देने से वे जीवन कलह में प्रवेश करने के योग्य और समर्थ हो सकते हैं। मुख्य बात यह है कि प्रथम नींव सुदृढ़ होना चाहिए। फिर उच्च शिक्षा की इमारत आपही आप सुधर जायगी।

शिक्षकों को स्वाधीनता।

माध्यमिक-शिक्षा के विषय को समाप्त करते हुए हम एक बात का उल्लेख और भी किये देते हैं। जिन लोगों के हाथ में शिक्षा की डोर है (चाहे वह सरकार हो या अन्य कोई) उनको केवल यही देख लेना चाहिए कि शिक्षा उपर्युक्त प्रकार से दी जाती है या नहीं। यदि वे इससे अधिक अपने अधिकार का उपयोग करेंगे तो शिक्षा में अनिष्ट परिणाम होने की सम्भावना है। जैसे कि अमुक पुस्तकें ही नियत की जायँ,

या अमुक पुस्तक के इतने ही सफे पढ़ाये जावें या अमुक शैली से ही पढाया जावे, इत्यादि प्रकार के बन्धनो से अध्यापकों को जकड देना बुद्धिमानी का काम नहीं है। इस विषय में, शिक्षकों तथा सञ्चालकोंको जितनी भी स्वाधीनता रहेगी, काम उतना ही अच्छा होगा। शिक्षको को स्वाधीनता देने से सब से बडा लाभ यह होगा कि शिक्षको को अनेक प्रकार की पद्धतियों तथा साधनो का प्रत्यक्ष अनुभव-द्वारा ज्ञान होगा और उसकी योग्यता पहिचानी जा सकेगी। इस तरह का समयानुसार तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन हर एक स्थान और हर एक विद्यालय में होना आवश्यक है और इस कार्य्य को करने के लिए यदि कोई लायक है तो वह हमारा अध्यापक वर्ग ही है।

बडे दु ख की बात है कि हमारा डिपार्टमेण्ट पुस्तको का चुनाव, उनकी पढाई और शिक्षा पद्धति निर्धारित कर के भी शान्त नहीं रहता। उसका व्यक्तिगत पाठशालाओं के अभिभावको पर तो विश्वास ही नहीं है, किन्तु अब वह ये बातें भी अपने अधिकार में रखता है कि अब अमुक लडका किस श्रेणी के योग्य हुआ है तथा उसकी परीक्षा कर ली जाय, यदि कोई व्यक्तिगत पाठशाला का लडका सरकारी विद्यालय में आता है तो उसकी योग्यता की पहिचान भी ये न कर सकता। यह भी बडे आश्चर्य की बात है। इस प्रकार से यह डिपार्टमेंट माध्यमिक पाठशाला को दोनो ओर से तंग करता रहता है। एक ओर से तो वह पाठशाला के सञ्चालको को बन्धन में जकड देता है और दूसरी ओर से विद्यार्थियो के पालकों को सताता रहता है। इसका सर्वदा यही उद्देश रहता है कि वह किसी न किसी प्रकार से सब की चोटियाँ अपने हाथ में रक्खे। यह

हालत तब तक ऐसी ही रहेगी जब तक सरकार हम पर विश्वास कर इस डिपार्टमेंट का कार्य्य हमारे ही हाथ में न देगी। समय आ गया है कि सरकार इस कार्य्य को हमारे ही हाथ में सौंप दे। हम अपनी शिक्षा का प्रबन्ध स्वयं करेंगे। सरकार तो अपना उद्देश स्थिर करके शिक्षा का अन्तिम सूत्र विद्यामन्त्री (Minister of Education) के हाथ में दे दे। इससे सरकार को शिक्षा में किसी भी प्रकार की अनिष्ट क्रान्ति उत्पन्न होने का डर न रहेगा। अब सरकार को देश के सुशिक्षितों पर अधिक विश्वास करना चाहिए। इससे उसकी आधी से अधिक कठिनाइयां दूर हो जायँगी। सरकार अब इस बात से अनभिज्ञ नहीं है कि हम लोग विश्वास-पात्र हैं या नहीं। अब ये बातें अधिक दिन तक न चल सकेंगी कि जो लोग शिक्षाप्रचार तथा सुधार करना चाहते हैं, उनको ऐसा न करने दिया जाय, और स्वयं भी कुछ न करें।

उच्च शिक्षा।

यह शिक्षा विशिष्टीकरण तत्व पर होनी चाहिए। इसका मतलब यह है कि विद्यार्थी जब विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो, तब वह अपने इच्छानुकूल कोई खास विषय चुन सके और उसी में परिपूर्णता प्राप्त कर सके। अतएव तदनुकूल इस शिक्षा का प्रबन्ध होना मुनासिब है। तथापि हम इस शिक्षा के विषय में जो विचार करेंगे वह इसी दृष्टि से करेंगे कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली को एकदम न मिटाते हुए उसीमें योग्य परिवर्तन और सुधार किया जा सके। यहां पर यह प्रश्न पैदा होता है कि जब विद्यार्थी अपनी उम्र के १६ वर्ष

समाप्त करके विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होता है तब वह विशिष्टीकरण-शिक्षा के योग्य बन जाता है या नहीं ? इसका उत्तर नहीं में देना होगा। अतएव यही उपयुक्त जान पड़ता है कि विशिष्टीकरण-शिक्षा का प्रारम्भ तब कराया जाय, जब विद्यार्थी कम से कम दो वर्ष तक विश्वविद्यालय में रह चुका हो।

इस समय प्रीवियस में चार विषय रक्खे गए हैं, अर्थात् गणित, अंग्रेज़ी, संस्कृत और फ़िज़िक्स। यदि माध्यमिक शिक्षा में उपर्युक्त परिवर्त्तन हो तो इनमें से गणित और फ़िज़िक्स तो माध्यमिक-शिक्षा में ही पूर्ण हो जावेगा, और बाक़ी बचे हुए अंग्रेज़ी तथा संस्कृत के साथ दो अन्य आवश्यक विषय रक्खे जा सकेंगे। हमारे विचार से ये दो विषय 'मातृभाषा' तथा 'भारतवर्ष का राजनीतिक इतिहास' होना चाहिए। प्रीवियस क्लास में 'फ़िज़िक्स' विषय लगभग छ वर्ष पूर्व प्रविष्ट किया गया है और हम कह सकते हैं कि यह विषय शिक्षा के साधक-बाधक प्रमाणों का विचार करके प्रविष्ट नहीं किया गया। इसका कारण दूसरा ही था। वह कारण यही था कि उच्च शिक्षा में से इतिहास विषय को (फिर चाहे वह स्वाभिमान एवं स्वावलम्बन की शिक्षा देनेवाला रोम या ग्रीस का इतिहास हो या स्वराज्य की इच्छा जाग्रत करनेवाला इङ्गलैण्ड का इतिहास हो) निकाल डालने के मुख्य उद्देश को छिपाने के लिए इस फ़िज़िक्स विषय का अड़ंगा लगाया गया। इसके पश्चात् यह विषय सरकारी यन्त्ररूप बने हुए विश्वविद्यालयों पर लाद दिया गया। यह बात बुद्धिमान् लोगों ने उसी समय ताड़ ली थी तथा बहुत से लोगों का अब तक भी यही ख़याल है। इसीलिए यदि फ़िज़िक्स उच्च शिक्षा से नीचे ढकेला जावेगा तो कोई भी मनुष्य उसके विरुद्ध न

होगा। पहले पहल फिज़िक्स विषय इण्टरमिडिएट में से निकाल कर प्रीवियस में लाया गया था, उसी प्रकार उसको अब एक और धक्का लगाकर माध्यमिक शिक्षा में ला देना कोई असम्भव बात नहीं है। इतना ही नहीं, पर जिस प्रकार हमारी पाठशाला में फिजिक्स और उसके साथ रसायन शास्त्र भी ठीक पद्धति से पढ़ाया जाता है, वैसा ही अन्यत्र भी हो तो इतना हर्ज न होगा।

मध्यमा में उपर्युक्त परिवर्तन के पश्चात् विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष के विषयों में अँग्रेज़ी और संस्कृत के साथ 'मातृ भाषा' तथा 'भारतवर्ष का राजनीतिक इतिहास' प्रविष्ट किया जाय। यदि अँग्रेज़ी में वर्तमान समय के अनुसार एक-दो पुस्तकें कठिन भी रक्खी गईं तो उससे कोई हानि नहीं है, पर अँग्रेज़ी साहित्य के इतिहास में से अर्वाचीन भाग का अच्छा परिचय होना आवश्यक है। संस्कृत शिक्षा में कालिदास तथा भास के नाटक और काव्यों के कुछ भाग पढ़ाये जायँ। संस्कृत शिक्षा का पठन वर्तमान की अपेक्षा कुछ अधिक होना चाहिए। मातृ भाषा की शिक्षा में उस भाषा के किसी प्राचीन कवि का (ज़रा कठिन सा एक या अधिक) काव्य, उस कवि का जीवन-चरित्र तथा कोई प्रौढ़ निबन्ध पढ़ाया जाय। आजकल इण्टरमिडिएट की परीक्षा में भारतवर्ष का इतिहास नियत है, वह खींचकर नीचे लाया जाय और उसकी जगह पर 'इङ्गलैण्ड का राजनीतिक इतिहास' रक्खा जाय। अँग्रेज़ी भाषा की शिक्षा में शेक्सपिअर, वर्ड्सवर्थ, शेले, बायरन के समान कवियों के काव्य तथा टेनीसन के बाद के सवा सौ वर्ष के साहित्य का इतिहास नियुक्त किया जाय। संस्कृत शिक्षा में संस्कृत के कठिन कठिन नाटक, ब्राह्मण ग्रन्थ

के लिए यह आवश्यक है कि उनके सञ्चालकगण उनमें सर्वोत्तम ग्रन्थालय बनाने की कोशिश करें। उनमें इस समय जो ग्रन्थालय हैं वे बहुत छोटे और अपर्याप्त हैं। यद्यपि उन पर अब वैतनिक पुस्तकाध्यक्ष भी नियत होने लगे हैं, किन्तु बड़े अफसोस की बात है कि उनको एक पैसे की भी पुस्तक खरीदने का अधिकार नहीं दिया जाता। हाँ, कमेटी चाहे तो उनको अपनी चुनी हुई पुस्तकें खरीदने की बारम्बार सूचना दे, और कमेटी को उसपर अपना कुछ अधिकार रखना भी यथायोग्य है, किन्तु उनके हाथ पांव बिलकुल जकड़ देना न्याय नहीं है। कमेटी को तो केवल यह देख लेना चाहिए कि बजेट के अनुसार खर्च होता है या नहीं। हर एक विश्वविद्यालय को अपने हाथ में शिक्षा का कार्य्य तब तक न लेना चाहिए, जब तक कि उसके समीप सर्वोत्तम और विपुल ग्रन्थसंग्रह तथा प्रतिष्ठित मासिक त्रयमासिक का पर्याप्त राशि में संग्रह न हो। हमारी एक दूसरी सूचना यह भी है कि बम्बई का विश्वविद्यालय एम० ए० क्लास के सम्पूर्ण लेक्चर अपने ग्रन्थालय में करवाये तथा उसमें योग्य मनुष्यों द्वारा लेक्चर देने का प्रबन्ध करे। इसी प्रकार विश्वविद्यालय की एक प्रकाण्ड 'लेबोरेटरी' होना चाहिए, जिसमें एम० एस सी० की शिक्षा का प्रबन्ध हो। इसके लिए थोड़े दिनों के लिए विदेशीय विद्वान् बुलाये जायें और जब वे हमारे यहां के मनुष्यों को इस विषय में होशियार बना दें तब वे वापिस स्वदेश को लौट जायें। हर्ष की बात है कि अब सरकार ने विश्वविद्यालय को 'अर्थशास्त्र' (एकानामिक्स) के प्रोफेसर का सब खर्च अपनी ओर से देना स्वीकार कर लिया है। हम चाहते हैं कि अर्थशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने

के लिए कोई भारतीय विदेश भेजा जाय, और जब वह उक्त शिक्षा प्राप्त करके वापिस लौटे तब उसे ही यह स्थान दिया जाय। हमको अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त करते करते लगभग पचास वर्ष से ऊपर हो गये हैं, अतएव अब शायद ही कोई मनुष्य कह सके कि हममें इस विषय की शिक्षा देने की पात्रता नहीं आई है। क्या अब भी हम दूसरों के चुल्लू से पानी पीने लायक हैं? यदि नहीं, तो क्या आवश्यकता है कि भारतीय अर्थशास्त्र की शिक्षा देनेके लिए युरोपियन प्रोफेसर बुलवाये जायँ? यदि पहले पहल दो चार विशेषज्ञ युरोप से बुलवा भी लिए जायँ तो कोई हानि नहीं, किन्तु तब तक यह आवश्यक है कि हमारे दो चार भारतीय नवयुवक विदेश भेजकर इसके लिए तैयार किये जायँ। जब वे यहां वापिस लौट आवें तब वे उपर्युक्त कार्य का वर्ष दो वर्ष तक प्रत्यक्ष अनुभव करें और अनन्तर इस जगह पर नियुक्त किये जायँ। जब तक हमारी बुद्धि और कार्यकारिणी शक्ति काम में नहीं लाई जाती—जब तक हर एक काम हमारी जिम्मेदारी पर नहीं सौंपा जाता—तब तक यदि कोई हम से यह कहे कि अभी आप में सब तरह की न्यूनतायें हैं, तो हम उसकी बात पर केवल हँस देंगे।

जब इस प्रकार का प्रबन्ध होगा तभी हमारे विश्वविद्यालय कुछ कुछ शिक्षा देनेवाले बन सकते हैं। किन्तु जब तक विश्व-विद्यालय के मान्य किये कालेज भिन्न भिन्न स्थानों में फैल हुए हैं तब तक ऐसा होना प्रायः असम्भव है। जब तक इन कालेजों के फैलाव के अनुसार भिन्न भिन्न स्थानों में छोटे छोटे विश्व-विद्यालय न बन सकेंगे तब तक यही हालत रहेगी। हमें आशा है कि इस ओर अवश्य प्रयत्न किया जायगा।

इस कार्य्य के लिए द्रव्य देने में आनाकानी न करेंगे। इस सम
देश में अनेक तरह के कालेजो की सृष्टि होना परमावश्य
है। जगह जगह पर मेडिकल, व्यापारी तथा औद्योगि
कालेज स्थापित होने चाहियें। महिलाओं के लिए पृथ
मेडिकल कालेजो की आवश्यकता है। यद्यपि दिल्ली में 'ले
हार्डिंज मेमोरियल कालेज' खुला है, तथापि उससे अ
प्रान्तो को, यथा महाराष्ट्र आदि-प्रान्त को, कुछ लाभ नहीं हो
सकता। अतएव अन्य प्रान्तो में भी ऐसे कालेज स्थापित हो

विश्वविद्यालयो का आन्तरिक प्रबन्ध।

अब हम उस संस्थाके आन्तरिक प्रबन्ध पर दो चा
शब्द लिखना चाहते है जिसके हाथ में उच्च शिक्षा क
डोर है। हमारे विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध के लिए दे
मण्डल बने हुए हैं, प्रथम 'सीनेट' और द्वितीय 'सिण्डीकेट'
इनमें से क्रमश प्रथम मण्डल तो नियमादि बनानेवाला
और दूसरा कामकाज देखने वाला। यह तो सब ठी
है, किन्तु सीनेट सभा की रचना सन्तोषकारक औ
स्वतन्त्र नहीं है। इस सभा में निर्वाचित, नियुक्त तथा 'एक्स
आफिशियो फेलोज' रहते हैं। उनकी संख्या १०७ होती है। यदि
एक्स-आफिसियो के ७ फेलो छोड़ दिये जायँ तो बाकी बचे
हुए १०० में से ८० तो सरकार के नियुक्त किये हुए और कुल
२० फेलो निर्वाचित रहते है। यह स्थिति बड़ी निराशाजनक
है। प्राय सभी सरकार-नियुक्त सभासद सरकार से डरते रहते है
और अनेक बार उनको अपनी आत्मा का हनन करके सरका

के इच्छानुसार अपनी सम्मति देनी होती है। इसके लिए कोई अलग प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व शिक्षा क्षेत्र में जो विलक्षण परिवर्तन हुआ है वही इसके लिए काफी प्रमाण है। अतएव इस ओर सुधार होनेकी अति आवश्यकता है। इसके लिए सुशिक्षितों को प्रयत्न करना चाहिए। कमसे कम आधे सभासद तो अवश्य ही रजिस्टर्ड ग्रेज्युएटों द्वारा चुने जाना चाहिए। इसके सिवा यह भी देख लेना चाहिए कि रजिस्टर करने के नियम कुछ कड़े हैं या नहीं। ग्रेज्युएटों के लिए दस वर्ष का नियम बड़ा ही सख्त और अन्यायपूर्ण है, उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन कराना चाहिए। इसके लिए तीव्र आन्दोलन किया जाय और चुनाव के समय योग्य व्यक्तियों पे, जिन्होंने शिक्षा विषय के लिए ही अपना जीवन अर्पण कर दिया हो, चुनाव की ओर अधिक ध्यान रहे। सिण्डीकेट में इस समय जितने सभासद हैं, वे पर्याप्त हैं। किन्तु उसके कामोंमें से दो एक काम फेकल्टी को दे देना योग्य है, जैसे परीक्षकों की नियुक्ति और व्याख्यानदाताओं की नियुक्ति का प्रबन्ध। कमसे कम पहले इतना होना आवश्यक है कि जब फेकल्टी परीक्षकों की नियुक्ति कर दे तब सिण्डीकेट बिना कारण उसमें हस्तक्षेप न करे। यदि कोई विशेष कारण उपस्थित हो तो बात दूसरी है। इससे यह लाभ होगा कि इस समय परीक्षकों की नियुक्ति में जो तरह तरह के रङ्ग दीख पड़ते हैं वे फिर न दीखेंगे। ऐसी नियुक्तियों के समय नियुक्त होनेवाले मनुष्यों की उपाधि (डिग्री) आदि पर नजर डाल लेना तो आवश्यक ही है, किन्तु सब से अधिक ध्यान इस बात पर दिया जाय कि नियुक्त होनेवाले मनुष्य ने

अपने विषय में कुछ प्रवीणता भी दिखलाई है या नहीं इस प्रकार की और भी सैकड़ो बातें ऐसी हैं जिनमें सुधार की आवश्यकता है, किन्तु हमारा कटाक्ष तो केवल मुख्य मुख्य बातो पर ही है। यदि इन मुख्य बातोंमें सुधार हो गया तो फिर छोटी-मोटी बातों का सुधार हो जाना कोई कठिन काम नहीं है।

स्त्री-शिक्षा।

अन्त में हम स्त्रीशिक्षा पर भी कुछ विचार करना चाहते हैं। अन्त में विचार करने का कारण यही है कि यह एक स्वतन्त्र विषय है। पुरुष की शिक्षा का प्रश्न जितने महत्त्व का है, उतने ही बल्कि कहीं अधिक महत्त्व का प्रश्न स्त्री शिक्षा का है। महाराष्ट्र में प्रो० कर्वे स्त्री-विश्वविद्यालय के लिए अश्रान्त परिश्रम कर रहे हैं। पंजाब-जालन्धर का कन्या महा-विद्यालय स्त्री-शिक्षा का स्तुत्य कार्य कर रहा है। इसके सिवा श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज (पूर्व के महात्मा मुन्शी रामजी) दिल्ली के पास कन्या गुरुकुल की स्थापना के कार्यमें लगे हुए हैं, और इस कार्य के लिए दिल्ली के सेठ रघूमलजी ने अपने एक लाख रुपये के दान से इस कार्य्यका श्रीगणेश कर दिया है। इन उपर्युक्त बातो से यही ध्वनित होता है कि इस समय भारतवर्ष में स्त्रीशिक्षा के लिए उदासीनता दूर होकर बड़ी भारी विचार जाग्रति हो रही है।

जिस प्रकार पुरुष समाज का एक अङ्ग है, तदनुसार स्त्री भी है। इतना ही नहीं किन्तु वह पुरुष से भी अधिक महत्त्व-पूर्ण अङ्ग है। इसका कारण स्त्रियो के नैसर्गिक कर्तव्य हैं। गृहस्थी के सम्पूर्ण कार्य दोनों पर ही अवलम्बित हैं, किन्तु

देशकी भावी सन्तानो को अच्छा-बुरा बनाना अधिकाश में स्त्रियोके ही हाथ में है और इसीलिए उनका दर्जा कुछ ऊँचा है। पहले स्त्रियोंको जो शिक्षा दी जाती थी वह पुरुष शिक्षा का उपाङ्ग खयाल करके दी जाती थी, किन्तु अब इस विचार को बदलने का समय उपस्थित हो गया है। इसका कारण यही है कि जब पहले पुरुष-शिक्षा का ही ठीक प्रबन्ध नहीं था, तब स्त्री-शिक्षा की ओर कम ध्यान जाना स्वाभाविक था, और जब पुरुष-शिक्षा का ठीक प्रबन्ध हो गया, तब पहले पहल स्त्री-शिक्षा की ओर उन कुछ लोगोंका ध्यान गया जो भविष्यकाल को पहचानते थे। अतएव उस समय पुरुषों की शिक्षा के समान स्त्रियों को भी शिक्षा दी जाने लगी। कुछ समय तो इसी वादानुवादमे व्यतीत हो गया कि स्त्रियों को शिक्षा दी जाय या नहीं? यद्यपि अब समय ने पलटा खाया है और लोग अब ऐसे वादानुवादको नीरस समझने लगे हैं, तथापि वह भी समयानुसार ही उपस्थित हुआ था। अनन्तर अनेक परिस्थितियों में से गुजरना पडा। तथापि हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष में अब तक भी स्त्री-शिक्षा का विचार स्त्रियों की ओर ध्यान देकर नहीं किया गया है।

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में यदि कोई ऐसा कहे कि लडकों के लिए जो अनेक स्कूल तथा कालेज खुले हुए हैं, उन्हीं में स्त्रियो की शिक्षाका प्रबन्ध हो जाय तो क्या हानि है? परन्तु ऐसे लोग विचार नहीं करते कि प्रथम तो स्कूल और कालेजों की सख्या ही इतनी न्यून है कि उनमें सम्पूर्ण देशके बालक नहीं समा सकते। कितने को तो माध्यमिक-शिक्षा से भी वञ्चित रहना पडता है, और इसी हालतमें यदि लडकियो को भी उन्हीं में स्थान दिया जायगा तो कितनी बडी कठिनाई होगी?

इसके सिवा कई ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि जिन स्कूलों में पहले लड़कियों की शिक्षा होती थी, उनमें भी अब वह बन्द कर दी गई है। हाँ जब तक स्त्रीशिक्षा का अन्य कोई भी प्रबन्ध न हो तब तक लड़कियां अशिक्षित रखने के बजाय लड़कों के स्कूल में ही भेजी जा सकती हैं, क्योंकि किसी के पास कोई ऐसी जादू की लकड़ी तो है ही नहीं कि जिस के फिराते ही समस्त देशमें कन्या विद्यालयों का जालसा बन जायगा। किन्तु यह उत्तर भी ठीक नहीं। ठीक उत्तर तो एक निराले ही तत्त्वपर अवलम्बित है।

अब यह बात तो निर्विवाद है कि समाजमें स्त्री-पुरुषों का दर्जा समान है। गृहस्थी रूपी गाडीका अच्छे प्रकार से चलना जितना पुरुष पर अवलम्बित है, उतना ही स्त्री पर। किन्तु दोनों के कार्य क्षेत्र जुदा जुदा हैं। इसके सिवा पुरुषों के कई कार्य स्त्रिया और स्त्रियों के पुरुष भी कर सकते हैं। जो लोग संसार की दैनिक घटनाएँ अवलोकन किया करते हैं वे जानते हैं कि पुरुषों के अनेक कार्य यथा सब तरह का लेखन-कार्य, अध्यापकी, व्यापारादि स्त्रियाँ भी उतनी ही योग्यता के साथ करती है, जितनी योग्यता के साथ पुरुष। एक शताब्दि पूर्व ये उपर्युक्त काय स्त्रियोंके लिए असम्भव कोटिमें गिने जाते थे और गायन, नर्तन, पाकशास्त्र आदि उनके ख़ास खास कार्य थे। किन्तु स्त्रियों के इन कार्यों को अब पुरुष भी बड़ी चपलतासे कर लेते हैं। क्या हम इन बातों को नित्य प्रति नहीं देखते? इस समय भी यह ख्याल किया जाता है कि पुरुष तो धैर्य्य के स्तम्भ हैं और स्त्रियां भीरुता की मूर्ति। किन्तु अब शिक्षा आदि साधनों से उपर्युक्त ख़याल गलत सिद्ध हो चुका है। इतना होते हुए भी स्त्री-पुरुषों में लिंग भेद

के अतिरिक्त कुछ स्वाभाविक एवं नैसर्गिक भेद भी अवश्य हैं। वे भेद मनुष्य के सुख की वृद्धि करनेवाले तथा स्त्री-पुरुष को परस्पर सहायता देनेवाले हैं। हम कह सकते हैं कि स्त्री पुरुष में जो मुख्य भेद हैं वह यही है कि बुद्धि की एकाग्रता स्त्री में नहीं है, और हृदय का प्रेम पुरुष में नहीं है। इससे यह मतलब न निकाला जाय कि स्त्रियाँ तो नितान्त निर्बुद्धि रहती हैं, और पुरुष केवल पाषाण हृदयी होते हैं। हमारे कहने का मतलब यही है कि बुद्धि का अधिक खजाना पुरुष में रहता है और हृदय का अधिक प्रेम स्त्री में। महायुद्ध या कोई अन्य सङ्कट के समय जिस प्रकार स्त्रियाँ किसी राज्यकार्य को चलाने में असमर्थ होती हैं, तदनुसार निष्काम सेवा भाव से या केवल दया से प्रेरित होकर प्रेमसहित लोगों की सुश्रूषा करना पुरुषों के लिए जरा कठिन है। बस, यही दोनों में नैसर्गिक भेद है। अब यदि शिक्षा का यही तात्पर्य समझा जाय कि शिक्षा द्वारा नैसर्गिक शक्तियों का स्वाभाविक अधिक विकास हो, तब सरलतया दोनों की शिक्षा में कुछ भिन्नत्व होना आवश्यक है। इसीलिए हमारा कहना है कि स्त्री शिक्षा का विषय एक स्वतन्त्र विषय है। अतएव उस शिक्षा का विचार भी स्वतन्त्र होना चाहिए।

भारत में स्त्री-शिक्षा के प्रश्न को हल करने के पहले एक दृष्टि हमारी वर्तमान अवस्था पर भी डाल लेना उपयुक्त है। हमारे भारतवर्ष में स्त्री के जीवन का उद्देश यही समझा जाता है कि वे गृहस्थी करें। हमारे देश में लड़की के अविवाहित रहने की प्रथा नहीं है और यदि कोई लड़की ऐसी रहती है तो वह बड़ी हास्यास्पद दृष्टि से देखी जाती है। यह प्रश्न दूसरा है कि भविष्य में क्या होगा। अतएव लड़कियों को जो शिक्षा दी जाय, वह यह विचार करके दी जाय कि भविष्य

में वे पत्नी और माताएँ बननेवाली हैं। यूरोप आदि देशों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की सख्या अधिक है, और इसीलिए वहाँ जैसी आर्थिक कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, सुदैव से हमारे देश में वैसी कठिनाइयाँ उपस्थित होने का कोई डर नहीं है। अतएव इस विषय पर विवाद करना निरर्थक है कि स्त्रियों को व्यावहारिक शिक्षा दी जाय या नहीं। हमारे बड़े भाग्य की बात है कि युरोप की युवतियों के समान हमारे देश में सख्याधिक्य के कारण या केवल विलास-प्रियता के कारण युवतियो में अविवाहित रहने की प्रथा नहीं है। इसी कारण हमारे यहाँ स्त्री शिक्षा का प्रश्न युरोप की अपेक्षा कुछ सहल हो जाता है।

हमारी सामाजिक स्थिति ने स्त्री-शिक्षा के लिए एक अस्थिर, पर कुछ न कुछ वयोमर्यादा बाँध दी है। यदि कुछ कट्टर सुधारकों की बात छोड़ दी जाय, तो कहना होगा कि अभी तक मध्यम स्थिति की लड़कियो की विवाह-मर्यादा तेरह या चौदह वर्ष से ऊपर नहीं बढ़ पाई है। हर्ष की बात है कि अब ऐसे चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं कि यह मर्यादा और अधिक बढ़ेगी। इसका मुख्य कारण यही है कि हमारे सुशिक्षित नवयुवक अपना अध्ययन समाप्त करने के पूर्व विवाह सरीखे उत्तर-दायित्व के कार्य्य से अनिच्छा प्रकट करने लगे हैं। अतएव उनकी उम्र के अनुसार लड़कियों की उम्र भी कुछ न कुछ अवश्य बढ़ेगी। इसके सिवा आजकल के नव युवकों को यह ख्याल भी होने लगा है कि "हमतो इतना परिश्रम करके विद्या प्राप्त करें और हमारे जीवन की सङ्गिनी, हमारी अर्द्धाङ्गिनी बिलकुल अक्षर-शत्रु रहे! ऐसी अक्षर-शत्रु पत्नी के साथ सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करना बड़ा

दु खमय हो जायगा।" और इसी स्थिति के कारण आजकल अनेक पुराण प्रिय घरानो में भी स्त्री शिक्षा ने स्थान पा लिया है। इन समस्त कारणो और परिस्थितियो का परिणाम अविदित रीति से यह होनेवाला है कि शीघ्र ही हमारे यहाँ लडकियो की विवाह मर्यादा सोलह वर्ष के ऊपर चढ जायगी।

हम स्त्री शिक्षा के विषय में उपर्युक्त मध्यम स्थिति के लोगो को ही लक्ष्य करके विचार करेंगे। किसी खास सुधारक या स्वतन्त्र विचारवाले मनुष्य को आदर्श मानकर तदनुकूल सर्व साधारण स्त्रियो की शिक्षा का क्रम निर्धारित कर देना बडी भारी भूल होगी। ऐसे मनुष्यो का विचार यहा पर नहीं करना है, तथा ऐसो का भी विचार नहीं करेंगे जो ससार करना नहीं चाहते। वे अपनी शिक्षा चाहे जिस ढग से दिलावें, फिर वे चाहे पुरुषो के समान एम० ए० हो या एम० डी०, उनसे हमारा कोई सरोकार नहीं। हमें तो सिर्फ उस पुराणप्रिय तथा मध्यम स्थिति के वर्ग की साधारण शिक्षा का विचार करना है, जो वर्ग हमारे देश में बडी भारी सख्या में फैला हुआ है।

अब हमारे देश में स्त्री शिक्षा के लिए दस वर्ष का समय रख देना कोई हानिकर नहीं है। लडकी की उम्र के छठे वर्ष शिक्षा का प्रारम्भ हो और सोलहवें वर्ष उसकी समाप्ति हो जाय। सम्भव है कि पहले पहल कुछ लडकियो को उनकी उम्र के तेरहवें या चोदहवें वर्ष ही आधी शिक्षा समाप्त कर गृहस्थी के कार्यो में पडना पडे, किन्तु इन कुछ इनी गिनी लडकियो पर से उनका शिक्षा समय छ सात वर्ष का सङ्कुचित कर देने म कोइ लाभ नहीं। क्योकि हमें विश्वास है कि दस-

बीस वर्ष में ही विवाह मर्यादा सोलह वर्ष तक बढ़ जावेगी। अस्तु। इस दस वर्ष की शिक्षा की रचना ऐसी की जाय, जिसके प्राप्त कर लेने पर लड़की को उसकी आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण शिक्षा मिल जाय और लोगों को भी यह विश्वास हो जाय कि जिस लड़की ने यह दशवर्षीय शिक्षा प्राप्त कर ली उसने सर्वाङ्ग सुन्दर संस्कृति प्राप्त कर ली।

प्रारम्भिक-शिक्षा।

लड़कियों की दस वर्ष की शिक्षा के स्वाभाविक दो विभाग हो, पहला प्रारम्भिक और दूसरा माध्यमिक। यदि प्रारम्भिक-शिक्षा के सब विषय लड़कों के ही समान हो तो भी कोई हानि नहीं। लड़कों के ही समान मातृ-भाषा का ज्ञान, इतिहास, गणित, भूगोल, सृष्टिज्ञान आदि विषय रक्खे जायँ। लड़कियां बाहर वायुसेवनार्थ भी ले जाई जावें। योग्य भावनाओं की पुष्टि देने के अर्थ साधारण गायन, गुड़ियें बनाना, गृह खेल, पालतू पशु-पक्षियों का पालन आदि बातों पर विशेष ध्यान दिया जाय। यदि हाल में बालिकाओं को यह प्रारम्भिक-शिक्षा लड़कों की पाठशाला में दी जाय तो भी कोई हानि नहीं है। ऐसा होना मुनासिब भी है, क्योंकि इसके सिवा कन्याओं की शिक्षा का अन्य उपाय ही नहीं है। इस समय सरकार, म्युनिसिपैलिटियाँ या लोकल बोर्ड पर्याप्त कन्या-पाठशालाएँ नहीं खोल सकते। अतएव लड़कों की प्रारम्भिक पाठशाला में ही लड़कियों का ऐसा प्रबन्ध होना लाजिमी है। किन्तु यह सब से अच्छी बात है कि कन्या-पाठशालाएँ अलग स्थापित करके उनमें अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाय। क्योंकि यह निर्विवाद है कि स्त्री अध्यापिकाएँ जितनी अच्छी तरह लड़कि

का हृदय पहचान सकती हैं तथा उनका कष्ट सहन कर सकती हैं, उतना पुरुष अध्यापक नहीं। किन्तु वे अध्यापिकायें योग्य शिक्षा पाई हुई हों। इनके साथ साथ उनमें उत्साह भी हो, क्योंकि वर्तमान समय की अध्यापिकाओं से यह काम न हो सकेगा।

माध्यमिक स्त्री-शिक्षा

स्त्रियों की माध्यमिक शिक्षा का समय हमने छः वर्ष का रक्खा है। इन छः वर्षों में मातृ भाषा का उत्कृष्ट ज्ञान हो जाना चाहिए। प्रथम के दो वर्षों में भाषा की चुनी हुई पुस्तकें पढ़ाकर बाद के चार वर्षों में स्वभाषा के गद्य तथा पद्य का अध्ययन खूब होना चाहिए। लड़कियाँ सूर, तुलसी आदि कवियों के साधारण काव्य समझ लें, "सरस्वती" तथा अन्य वर्तमान पत्रों का गद्य समझ सकें, और अच्छी तरह लिख लें तथा बोल लें। यदि किसी समय कोई निबन्ध लिखने को दिया जाय तो उसको खूब शुद्धतापूर्वक और विचारपरिप्लुत लिख सकें। हमें खूब अनुभव है कि जो लड़कियां आजकल की पचम श्रेणी तक और कुछ अंग्रेजी भी पढ गई हैं, वे वर्तमान पत्रों की प्रौढ भाषा समझने में असमर्थ होती हैं। अतएव भाषा शिक्षा ऐसी हो, जिसके कारण उनमें न्यूनतायें न रहने पावें। इस बात पर भी ध्यान दिया जाय कि उनके अक्षर सुन्दर हों। मातृभाषा की शिक्षा के लिए प्रति-सप्ताह ५ घण्टे पर्याप्त होंगे। इसके सिवा हिन्दी भाषा भाषियों को छोड़कर अन्य भारतीय भाषा-भाषी लड़कियों के लिए प्रथम के दो वर्षों में हिन्दी भाषा तथा संस्कृत, और पिछले पाँच वर्षोंमें संस्कृत तथा अँग्रेजी भाषा दूसरी भाषा

के बतौर पढ़ाई जावें। हिन्दी भाषा को दोनों वर्ष में प्रति सप्ताह ३ घण्टे, संस्कृत को पाँच वर्ष तक ४ घण्टे और अँग्रेज़ी को प्रथम के दो वर्षों में ४ और पश्चात् ६ घण्टे पढ़ाना पर्याप्त है। अँग्रेज़ी भाषा 'कनवर्सेशनल' पद्धति से पढ़ाई जाय और जहाँ तक हो सके वहाँ तक रायल नेल्सन, लॉगमन की रीडरें पढ़ाकर बाद में 'विकार आफ वेकफील्ड' तथा राबिन्सन क्रूसो, सी पुस्तकें सम्पूर्ण पढ़ा दी जावें। लड़कियों के हाथ में अँग्रेज़ी की जो पुस्तकें दी जायँ वे खूब सरल तथा शुद्ध हों। एक ओर तो चासर तथा स्पेन्सर की पुरानी पुस्तकें और दूसरी ओर मेकाले और बर्क के समान नूतन पुस्तक हों। इनमें से भी जो अधिक दुर्बोध हों वे छोड़ दी जावें। सब से ज़ियादह इस बात पर ध्यान दिया जाय कि लड़कियाँ व्याकरण के नियमानुसार ठीक ठीक अनुवाद कर सकें तथा शुद्ध शुद्ध लिख और बोल सकें। यह बात सच है कि पुरुष-शिक्षा की अपेक्षा स्त्री-शिक्षा का समय एक वर्ष कम है, अतएव लड़के और लड़कियों की शिक्षा में कुछ अन्तर अवश्य रहेगा। किन्तु हमें विश्वास है कि भाषाओं का सामान्य ज्ञान दोनों को ही बराबर होगा। संस्कृत शिक्षा में प्रथम 'हितोपदेश' और 'पञ्चतन्त्र' और बाद में 'रामायण' और 'महाभारत' के सरल सर्ग पढ़ाने चाहिये। तीसरे वर्ष 'रघुवंश' तथा 'कुमारसम्भव' के सुबोध सर्ग पढ़ाये जायँ, और चौथे वर्ष 'कादम्बरीसार' तथा कोई सरल नाटक (चाहे भास कविकृत नाटक हो) पढ़ाया जाय। अन्तिम वर्ष 'कुसुम माला' या 'दसकुमार-चरित्र' तथा 'कादम्बरीसार के सरल भाग पढ़ाये जायँ। सबसे पहले व्याकरण की जल्दी न की जाय, क्योंकि वह हितोपदेश पर से सुलभतया सिखाया जा

समझना है। इसके पश्चात् के चार वर्षों में कमसे कम इतना व्याकरण तो अवश्य सिखलाया जाय जो भाण्डारकर की दो पुस्तकों की बराबरी कर सके। कम से कम संस्कृत भाषा की श्रेष्ठ संस्कृति स्त्रियों में नामशेष भी न रहनी चाहिए।

इतिहास-भूगोल की शिक्षा उतनी ही दी जाय, जितनी कि लड़कों के लिए निर्धारित की गई है। यदि इतिहास में से इङ्गलैण्ड का इतिहास—कमसे कम अङ्गरेजी राज्य पद्धति का इतिहास—निकाल दिया जाय तो भी कोई हानि नहीं। इतिहास के इस भाग को पीछे कालेज में पढ़ाना योग्य है। इसके लिए प्रारम्भ से अन्त तक चार घण्टे पर्याप्त हैं। भारतवर्ष तथा इङ्गलैण्ड के भूगोल को छोड़कर अन्य देशों का भूगोल जियादह गुरुतम गुरुथा न हो। भूगोल के साथ साथ खगोल का भी सामान्य ज्ञान करा देना चाहिए। लड़कियों को ग्रह, तारे, ग्रहण, गति, इनका पृथ्वी पर क्या परिणाम होता है, तथा दिन, रात, मास आदि का सुबोध ज्ञान हो जाना चाहिए।

यदि लड़कियों के लिए गणित की शिक्षा कम भी रहे तो कोई हानि नहीं। गणित की कोई ऐसी पुस्तक चुन ली जाय, जिसके द्वारा लड़कियों को अङ्कगणित—त्रयराशिक, साधारण ब्याज तक—बीज-गणित फैक्टर्स तक और भूमिति के मूल तत्वों का ज्ञान हो सके। अङ्कगणित का बहुत सा अंश तो प्रारम्भिक-शिक्षा में ही हो जावेगा और बाकी माध्यमिक में। इस विषय के लिये प्रति सप्ताह २ घण्टे पर्याप्त हैं। गणित विषय बुद्धि से सम्बन्ध रखता है। अतएव लड़कियों के लिए उसकी शिक्षा इतनी ही काफी है कि जिससे वे अपने घर का हिसाब किताब ठीक ठीक रख सकें। स्त्रियों को गणित के बड़े बड़े सिद्धान्तों

से कोई काम नहीं पडता और इसीलिये उनको गणित शिक्षा विशेष रूप से देना केवल निरुपयोगी है।

सृष्टिज्ञान की आवश्यकता लडकों के समान लडकियो को भी रहती है। फूल, वृक्ष तथा घास कैसे बढ़ते हें तथा उनका क्या उपयोग हे, ये साधारणसी बातें हैं। किन्तु वे भी आजकल की माताओं को विदित न होने से उनकी सन्तानो की जिज्ञासा-बुद्धि पर अज्ञान रूपी गाढ अन्धकार का पर्दा डाल देती हे। हमारे इस कथन का अनुभव बहुत से पाठको को अवश्य ही होगा। अतएव ऐसी नित्य को व्यवहारोपयोगी वस्तुओं तथा प्राणियो का ज्ञान होना लडकियो के लिए अति आवश्यक है। इसके साथ साथ मनुष्य की शरीररचना का पूर्ण ज्ञान भी प्रदान किया जाय। इन विषयो के लिए माध्यमिक शिक्षा में प्रारम्भ से अन्त तक प्रति-सप्ताह दो घण्टे पर्याप्त हे। याद रहे कि ये सम्पूर्ण ज्ञान प्रयोगो द्वारा दिया जाना चाहिए।

'गृह-प्रबन्ध' एक स्वतन्त्र विषय रक्खा जाय। यदि यह विषय प्रारम्भिक-शिक्षा के अन्तिम वर्ष से आरम्भ हो जाय तो और भी अच्छा है। घर में सब प्रकार की स्वच्छता रखना, सब वस्तुओं का यथायोग्य प्रबन्ध करना, इत्यादि बातो से लगाकर क्रमश पाक विद्या तक सम्पूर्ण काम शनै शनै सिखाये जायें। यदि सच पूँछा जाय तो इस शिक्षा का मुख्य स्थान घर है, किन्तु ऐसी शिक्षा पाठशालाओं में भी दी जानी आवश्यक हे। उसके बिना जो पुराने निरुपयोगी रस्म रिवाज हें वे नष्ट न हो सकेंगे। इस शिक्षा के लिए 'बोर्डिङ्ग स्कूल' भी खोले जा सकते हैं। यदि ऐसे स्कूल खोले जायें तो उनमें लडकियो के हाथ से वे सम्पूर्ण कार्य्य

कराये जायँ, जो स्त्रियों के लिए उत्तरदायित्व के रहते हैं। इसी के साथ उन पदार्थों का ज्ञान भी दिया जाय, जो कि स्त्रियों के नित्य काम में आते हैं। इससे सब से बड़ा लाभ यह होगा कि आजकल बड़े घरों की स्त्रियों को जो सब प्रकार से नौकर-नौकरानियों पर अवलम्बित रहना पड़ता है, और सब तरह से उनका मिजाज बर्दाश्त करना पड़ता है वह बात न फिर रहेगी। इस शिक्षा के लिए जियादह से जियादह दो घण्टे पर्याप्त हैं।

आरोग्यशास्त्र–भारतवर्ष की स्त्रियों के लिए आरोग्य शास्त्र जितने महत्व का तथा उपयोगी विषय है, उतने महत्व का विषय शायद ही कोई और हो। बच्चों की भयङ्कर प्राण-हानि, स्त्रियों की निर्बलता तथा असामयिक मृत्यु, इत्यादि अनेक बातें केवल इस शास्त्र की साधारण बातों की अनभिज्ञता के कारण होती हैं। घर का कचरा-कूड़ा झाड़ कर कोनामें लगा देना या द्वारपर ही डाल देना, मोरियों में हमेशा बदबू और सीलका रहना, सुन्दर तथा स्वर्गीय वायुको खिड़कियाँ बन्द करके न आने देना, मुँह पर लिहाफ ओढ़ कर सोना, हररोज मल शुद्धि ठीक होती है या नहीं इस ओर ध्यान न देना, इत्यादि बातें दिखने में तो साधारणसी दीखती हैं, परन्तु इन पर ध्यान न देने से बड़ी २ भयङ्कर हानियाँ उठानी पड़ती हैं। इन सब बातों को लड़कियों को उदाहरण दे दे कर समझा देना चाहिए। इसी शास्त्रके अन्तर्गत प्रारम्भिक आघातों पर शीघ्र होनेवाले उपचार, रोगियों की सुश्रुषा, बाल-पोषण आदि बातों का भी समावेश कर दिया जाय। कारण यह है कि साधारण स्थितिवाले मनुष्य को जरा जरा सी बात के लिए डाक्टर या वैद्य को बुलवाना तथा परिचारिका (नर्स) रखना प्राय

असम्भव है। प्राय अनेक स्त्री-पुरुषों को हरएक बात में एक दूसरे पर अवलम्बित रहना पडता है। ऐसी हालत में यदि उन दोनो में से एक को भी उपर्युक्त प्रकार का ज्ञान नहीं हो तो फिर उन बेचारों की फजीती का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। इस विषय के लिए पूरे छ वर्ष तक प्रति सप्ताह २ घण्टे अवश्य ही रक्खे जायँ। सीने-पिरोने का विषय गृह प्रबन्ध के अन्तर्गत रख दिया जाय। ड्राइङ्ग हमेशा एक घटा तक कराया जाय।

सङ्गीत-शिक्षा सप्ताह भर में दो बार दी जाय। इसके अन्तगत गाना, बजाना और नृत्य करना, इन तीनों बातो का समावेश रहे। फिर जिसका जी चाहे वह उस शाखाकी शिक्षा ग्रहण करे। इस ललित कला का हमारे हिन्दू घरानों से कई शताब्दियो से लोप होता आरहा है। हमारे घरोंमें उपर्युक्त शिक्षा के न होने से हमारे जीवन शुष्क तथा नीरस हो रहे हैं। हमारी इस बात का प्रत्येक सहृदय अनुभव करता होगा। हमारे घरो में मनोरञ्जन की सामग्री-गप-शप के सिवा और कुछ भी न रही। कई प्राचीन ग्रन्थो में ऐसे उल्लेख पाये जाते हैं कि हमारे यहा पहले लडकियो को विवाह के पूर्व सङ्गीत शिक्षा दी जाती थी। नृत्य अर्थात् नाचने का नाम सुनते ही बहुत से पाठक चौंक पडे होंगे कि क्या हमारी लडकियो को इसकी शिक्षा भी देनी चाहिए! परन्तु यदि वास्तविक रूपसे देखा जाय तो इसमें गर्हणीय कुछ भी नहीं है। दोष तो उस एक खास वर्ग का है, जिसके हाथ में यह शिक्षा चली गई है। हमारे घरोंमें लडकियाँ बहुधा फुगडी आदि के सामान अनेक खेल खेला करती है। क्या वे नृत्यकला के ही सँकुचित रूप नहीं हैं? उन्हीं खेलो में कुछ सुधार करके इस कला का पुनरुद्धार करना योग्य है।

इस शिक्षा का शुल्क इतना कम रक्खा जाय कि जिससे मध्यम स्थिति की सब लड़कियाँ यह शिक्षा प्राप्त कर सकें। सम्भव है, अभी इसके लिए पर्याप्त अध्यापिकाएँ न मिल सकें, तथापि इसमें ३/४ भाग तो स्त्री-अध्यापिकाओं का अवश्य रहे। यदि 'बोर्डिङ्ग हाउस' हो तो उसका भी कुल कार्य स्त्रियों के अधिकार में रहे। सब कामों में यही उद्देश रहे। इसका कारण यही है कि लड़कियों की कठिनाइयाँ, उनकी आवश्यकतायें तथा हृदय-परीक्षा, जितनी उत्तमता से अध्यापिकाएँ कर सकती हैं, उतनी उत्तमता से अध्यापक नहीं। इसके सिवा शिक्षण-कार्य में दोनों ओर से जो एक प्रकार की उल्लसित वृत्ति का रहना आवश्यक है, वह शिक्षकों तथा कम-ज्यादा उम्र की लड़कियों के बीच नहीं रह सकती।"

उच्च-शिक्षा।

"स्त्रियों की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध भी पुरुषों से अलग होना चाहिए। हम कहीं ऊपर कह आए हैं कि यदि किसी खास व्यक्ति अर्थात् स्त्री की इच्छा पुरुषों के समान कालेज में पढ़ कर विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त करने की हो, और वह इस योग्य है तो उसके लिए ऐसा करने में किसी भी प्रकार का बन्धन न होना चाहिए। इतना ही नहीं पर ऐसी स्त्री की उपर्युक्त मध्यमा शिक्षा में भी उस दृष्टि से पिछले एक दो वर्षों में योग्य परिवर्तन कर देना चाहिए। अर्थात् इसी नियमित समय में गणित शिक्षा को कुछ अधिक बढ़ा कर मध्यमा शिक्षा की कुछ मियाद भी बढ़ा देना चाहिए, जिससे वह हर तरह से विश्वविद्यालय प्रवेश के योग्य बन

असम्भव है। प्राय अनेक स्त्री-पुरुषों को हरएक बात में एक दूसरे पर अवलम्बित रहना पड़ता है। ऐसी हालत में यदि उन दोनों में से एक को भी उपर्युक्त प्रकार का ज्ञान नहीं हो तो फिर उन बेचारों की फजीती का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। इस विषय के लिए पूरे छ वर्ष तक प्रति सप्ताह २ घण्टे अवश्य ही रक्खे जायँ। सीने-पिरोने का विषय गृह प्रबन्ध के अन्तर्गत रख दिया जाय। ड्राइङ्ग हमेशा एक घंटा तक कराया जाय।

सङ्गीत-शिक्षा सप्ताह भर में दो बार दी जाय। इसके अन्तर्गत गाना, बजाना और नृत्य करना, इन तीनों बातों का समावेश रहे। फिर जिसका जी चाहे वह उस शाखाकी शिक्षा ग्रहण करे। इस ललित कला का हमारे हिन्दू घरानों से कई शताब्दियों से लोप होता आरहा है। हमारे घरोंमें उपर्युक्त शिक्षा के न होने से हमारे जीवन शुष्क तथा नीरस हो रहे है। हमारी इस बात का प्रत्येक सहृदय अनुभव करता होगा। हमारे घरों में मनोरञ्जन की सामग्री गप-शप के सिवा और कुछ भी न रही। कई प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे उल्लेख पाये जाते हैं कि हमारे यहां पहले लड़कियों को विवाह के पूर्व सङ्गीत शिक्षा दी जाती थी। नृत्य अर्थात् नाचने का नाम सुनते ही बहुत से पाठक चौंक पड़े होंगे कि क्या हमारी लड़कियों को इसकी शिक्षा भी देनी चाहिए! परन्तु यदि वास्तविक रूपसे देखा जाय तो इसमें गर्हणीय कुछ भी नहीं है। दोष तो उस एक खास वर्ग का है, जिसके हाथ में यह शिक्षा चली गई है। हमारे घरोंमें लड़कियाँ बहुधा फुगडी आदि के सामान अनेक खेल खेला करती है। क्या वे नृत्यकला के ही संकुचित रूप नहीं हैं? उन्हीं खेलों में कुछ सुधार करके इस कला का पुनरुद्धार करना योग्य है।

इस शिक्षा का शुल्क इतना कम रक्खा जाय कि जिससे मध्यम स्थिति की सब लड़कियाँ यह शिक्षा प्राप्त कर सकें। सम्भव है, अभी इसके लिए पर्याप्त अध्यापिकाएँ न मिल सकें, तथापि इसमें ¾ भाग तो स्त्री-अध्यापिकाओं का अवश्य रहे। यदि 'बोर्डिङ्ग हाउस' हो तो उसका भी कुल कार्य स्त्रियों के अधिकार में रहे। सब कामों में यही उद्देश रहे। इसका कारण यही है कि लड़कियों की कठिनाइयाँ, उनकी आवश्यकताएँ तथा हृदय-परीक्षा, जितनी उत्तमता से अध्यापिकाएँ कर सकती हैं, उतनी उत्तमता से अध्यापक नहीं। इसके सिवा शिक्षण-कार्य में दोनों ओर से जो एक प्रकार की उल्लसित वृत्ति का रहना आवश्यक है, वह शिक्षकों तथा कम-ज्यादा उम्र की लड़कियों के बीच नहीं रह सकती। *

उच्च-शिक्षा।

स्त्रियों की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध भी पुरुषों से अलग होना चाहिए। हम कहीं ऊपर कह आए हैं कि यदि किसी खास व्यक्ति अर्थात् स्त्री की इच्छा पुरुषों के समान कालेज में पढ़ कर विश्वविद्यालय की डिग्री प्राप्त करने की हो, और वह इस योग्य है तो उसके लिए ऐसा करने में किसी भी प्रकार का बन्धन न होना चाहिए। इतना ही नहीं पर ऐसी स्त्री की उपर्युक्त मध्यमा शिक्षा में भी उस दृष्टि से पिछले एक दो वर्षों में योग्य परिवर्तन कर देना चाहिए। अर्थात् इसी नियमित समय में गणित शिक्षा को कुछ अधिक बढ़ा कर मध्यमा-शिक्षा की कुछ मियाद भी बढ़ा देना चाहिए, जिससे वह हर तरह से विश्वविद्यालय-प्रवेश के योग्य बन

इष्ट परिणाम होने की सम्भावना है। आजकल हमारे यहां स्त्रियों की बाढ़ केवल चौदह या पन्द्रह वर्ष तक तो होती है और फिर उन्हें उतरती कला लग जाती है। पाश्चिमात्य देशों में लडकियों की बाढ़ बीस वर्ष तक होती है। वहाँ की लडकियों के मुख पर चमकने वाला तेज तथा उनका अल्हडपन हमारे यहाँ देखने को भी नसीब नहीं होता। इसका कारण यही है कि यहाँ की लडकियों पर असमय में ही गृहस्थी तथा मातृपद का भार डाल दिया जाता है। हमारे यहाँ की भी कुछ शिक्षित लडकियों के मुख पर, जिनका विवाह सोलह वर्ष की उम्र तक नहीं हुआ है, एक प्रकार का भव्य प्रकाश देखने में आता है। यदि इसके साथ साथ उन्हें शारीरिक-शिक्षा भी दी जाय तो फिर कहना ही क्या है।

हमें जो कुछ भी कहना था वह सब हम कह चुके। हमें इस उपसहार लिखने की स्फूर्ति इसी कारण से हुई कि विदेशी लोगों में क्या क्या विशेषताएँ हैं, वे हममें हैं या नहीं, यदि हैं तो उसमें क्या फर्क है तथा क्या सुधार होना चाहिए, इत्यादि। तुलनात्मक विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था और वे हम यथामति प्रकट कर चुके। अब हम अन्त में सम्पूर्ण सुशिक्षित भाइयों से एक निवेदन करना चाहते हैं। यह निवेदन यही है कि बिना शिक्षा के—बिना सार्वजनिक शिक्षा के—हमारे देश की उन्नति होना कठिन है। इस बात को हम और आप ही नहीं, किन्तु देश का बच्चा बच्चा तक पहचान गया है। अतएव अब शिक्षा-प्रचार के लिए सब महानुभाव अपनी २ ओर से यथाशक्ति प्रयत्न करें। इसके बिना हमारी सुगति न होगी। जब हमारी स्वदेशी सरकार तक बिना

परिश्रम के—बिना आन्दोलन के—कुछ नहीं देतीं, तब यह विचार कर बैठ रहना बड़ी गलती होगी कि स्वयं अमृत आकर हमारे मुख में पड़ जायगा। जो प्रजा के मेम्बर हैं उनको कौन्सिलों में बिल पेश कर करके, प्रश्नों की झड़ियां लगा कर सरकार को चैन न लेने देना चाहिए, और जो समाज के नेता कहलाते हैं, उनको व्याख्यानों तथा लेखों द्वारा जनता का मत इसके अनुकूल बनाना चाहिए। इसके बाद प्रजा-मत सरकारी कौन्सिलों में ज़ोरशोर से प्रतिपादित किया जाय। इससे यह लाभ होगा कि जैसे कुछ दिनों पहले इसी विषय में लण्डन में भारतीय स्त्रियोंका एक डेपुटेशन स्टेट सेक्रेटरी साहब की सेवा में गया था और उसकी जो दुर्गति हुई थी, वैसी दुर्गति फिर न हो सकेगी। जो सर्वसाधारण की या व्यक्तिगत संस्थाएं हैं, उनको अपना अधिकार सर्वदा सुरक्षित रखना चाहिए और डिपार्टमेण्ट के आक्रमण को कुछ भी महत्त्व न देना चाहिए। क्योंकि संस्थाओं के सुभीते के लिए डिपार्टमेण्ट है, न कि डिपार्टमेण्ट के लिए संस्थाएं। इसके लिए यह आवश्यक है कि इस प्रकार की सम्पूर्ण निजी संस्थाओं में एकता रहे। यदि मेरी जूती तेरे पैर में नहीं आती और तेरी मेरे में तो फिर वही हालत होनेवाली है, जैसी कि 'पञ्चतन्त्र' में वर्णित बैल की हुई थी। सब को मिल कर डिपार्टमेंट पर अपना प्रभाव डालना चाहिए तथा उसको योग्य-मार्ग की सलाह देनी चाहिए। जो श्रीमान् या धनाढ्य व्यक्ति हैं उनको इस कार्य में हर प्रकार की मदद देना योग्य है। हरएक धनाढ्य व्यक्ति यदि जाति-अभिमान से भी प्रेरित होगा और कम से कम वह अपनी जाति के लिए एक एक पाठशाला, कालेज या उद्योग धन्धों की पाठशाला खोल देगा, तो इससे भी

लाभ होने की सम्भावना है। क्योंकि जाति समाज का एक अङ्ग है, और यदि हरएक अङ्ग अपनी अपनी उन्नति करेगा तो सम्पूर्ण समाज की उन्नति सहजतया हो जायगी। लोगो को सरकार को बतला देना चाहिए कि हमने शिक्षा विषयक इतना काम कर दिखलाया है, अतएव अब सरकार का भी कर्तव्य है कि वह अमुक अमुक काम को खुद करे। इस प्रकार से सरकार पर भी प्रभाव गिरेगा और उसे विवश होकर यह काम करना ही पड़ेगा। हमें तो अपने कृतव्यो द्वारा सरकार की आँखें खोल देनी चाहिए। इसके विरुद्ध जो लोग न तो अपने शरीर को कुछ कष्ट पहुँचने देते हैं, और न कुछ द्रव्य-सहायता ही करते हैं, किन्तु बड़ी बड़ी डींगें मारते हैं कि सरकार को ऐसा करना चाहिए, तथा लोगो को ऐसा करना चाहिए उनसे कुछ नहीं हो सकता। ऐसी निरर्थक तथा निःसत्त्व आवाज़ किसी भी काम की नहीं होती और न उसका कुछ प्रभाव ही गिरता है। अतएव उचित यही है कि हम अब कर्मवीर बनें।

समाप्त।

शुद्धि पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	ढूँढ	ढूँढ
५	२५	प्रत्यत्त	प्रत्यक्ष
७	१५	आनिवार्य्य	अनिवार्य्य
१०	११	स्वादेशाभिमानी	स्वदेशाभिमानी
२०	७	कुल	कुछ
२५	५	उनव स्तुओं	उन वस्तुओं
२६	१२	पुरस्कर	पुरस्कार
३८	६	पद्धनिक	पद्धति के
३६	५	ॐ	ॐ०
४२	१५	ली थी	लिया था
६७	१७	मृत तुल्य	समुद्र में अमृत तुल्य
६८	३	नत्कल	नत्काल
६६	१	सुमतायें	सुमातायें
७०	२४	दिखना	दिखाना
१०१	२८	नेइस	ने इस
१०५	१	आन्तरिक	आन्तरिक
१०७	२०	सहाय	सहायक
१११	१०	दया	दाय
"	२०	केव द्यार्थी	के विद्यार्थी
"	२२	सुन	सुनना
११५	७	अन्तर्गति	अन्तर्गत
१३०	११	मिलता	मिलती
१३३	२	का आय	की आय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३३	३	होता	होती
१३४	२८	आतरिक्त	अतिरिक्त
१४१	२०	नकी	उनकी
१६२	३	आर से	ओर से
१९०	२	सवात्तम	सर्वोत्तम
२०४	१८	को	का
"	२५	का	की
२०५	४	में नामशेष भी न रहनी	में से तो नामशेष न होनी
२०७	७	न फिर	फिर न
"	९	अरोग्य	आरोग्य
"	१७	मॅह	मुँह
२०८	२३	सामान	समान

इन अशुद्धियों के अतिरिक्त कुछ स्थानों पर "फेकल्टी" की जगह "फकल्टी" और "सेक्सनी" के स्थान पर "सकसनी" हो गया है। पाठक सुधार कर पढ़ें।
